ગુજરાત રાજયના શિક્ષણવિભાગના પત્ર-ક્રમાંક
મશબ/1116/1052-54/છ, તા. 28-11-2016-થી મંજૂર

हिन्दी

(प्रथम भाषा)

कक्षा 10

प्रतिज्ञापत्र

भारत मेरा देश है।
सभी भारतवासी मेरे भाई-बहन हैं।
मुझे अपने देश से प्यार है और इसकी समृद्धि तथा बहुविध परम्परा पर गर्व है।
मैं हमेशा इसके योग्य बनने का प्रयत्न करता रहूँगा।
मैं अपने माता-पिता, अध्यापकों और सभी बड़ों की इज्जत करूँगा एवं हरएक से नम्रतापूर्वक व्यवहार करूँगा।
मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने देश और देशवासियों के प्रति एकनिष्ठ रहूँगा।
उनकी भलाई और समृद्धि में ही मेरा सुख निहित है।

રાજ્ય સરકારની વિનામૂલ્યે યોજના હેઠળનું પુસ્તક

गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल
'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर-382 010

© गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर
इस पाठ्यपुस्तक के सर्वाधिकार गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के अधीन हैं। इस पाठ्यपुस्तक का कोई भी अंश किसी भी रूप में गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के नियामक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

विषय परामर्शन

डॉ. वीरेन्द्रनारायण सिंह

लेखन-संपादन

डॉ. किशोरीलाल कलवार (कन्वीनर)
श्री विजयकुमार तिवारी
डॉ. सुल्तान अहमद
डॉ. राजेन्द्रपाल सिंह राणा
डॉ. शान्तिबहन शर्मा
श्री जे. पी. चौहान

समीक्षा

डॉ. रायसींग चौधरी
श्री मुकेशकुमार तिवारी
डॉ. पारूल एम. दवे
डॉ. ईश्वरसिंह चौहान

संयोजन

डॉ. कमलेश एन. परमार
(विषय संयोजक : हिन्दी)

निर्माण-संयोजन

श्री आशिष एच. बोरीसागर
(नायब नियामक : शैक्षणिक)

मुद्रण-आयोजन

श्री हरेश एस. लीम्बाचीया
(नायब नियामक : उत्पादन)

प्रस्तावना

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार किए गए नये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के अनुसंधान में गुजरात माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षण बोर्ड द्वारा नया पाठ्यक्रम तैयार किया गया है, जिसे गुजरात सरकार ने स्वीकृति दी है।

नये राष्ट्रीय अभ्यासक्रम के परिपेक्ष्य में तैयार किए गए विभिन्न विषयों के नये अभ्यासक्रम के अनुसार तैयार की गई यह **कक्षा 10, हिन्दी (प्रथम भाषा)** की पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मंडल हर्ष का अनुभव कर रहा है। नई पाठ्यपुस्तक के हस्तप्रत निर्माण में एन.सी.ई.आर.टी. तथा अन्य राज्यों के अभ्यासक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को देखते हुए गुजरात की नई पाठ्यपुस्तकों को गुणवत्तालक्षी कैसे बनाया जाय, इसके लिए संपादकीय पेनल ने सराहनीय प्रयास किया है।

इस पाठ्यपुस्तक को प्रकाशित करने से पहले इसी विषय के विषय विशेषज्ञों तथा इस स्तर पर अध्यापनरत अध्यापकों द्वारा सर्वांगीण समीक्षा की गई है। समीक्षा शिविर में मिले सुझावों को इस पाठ्यपुस्तक में शामिल किया गया है। पाठ्यपुस्तक का मंजूरी क्रमांक प्राप्त करने की प्रक्रिया के दौरान गुजरात माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षण बोर्ड से प्राप्त हुए सुझावों के अनुरूप इस पाठ्यपुस्तक में आवश्यक सुधार करके इसे प्रकाशित किया गया है।

नये अभ्यासक्रम का एक उद्देश्य है, इस स्तर के छात्र व्यावहारिक भाषा का उपयोग करने के साथ-साथ अपनी भाषा अभिव्यक्ति को विशेष असरकारक बनाएँ। साहित्यिक स्वरूप एवं सर्जनात्मक भाषा के परिचय के साथ-साथ हिन्दी भाषा की खूबियों को समझकर अपने स्व-लेखन में उनका प्रयोग करना सीखें, इसलिए भाषा-अभिव्यक्ति एवं लेखन के लिए छात्रों को पूर्ण अवकाश दिया गया है।

इस पाठ्यपुस्तक को रुचिकर, उपयोगी एवं क्षतिरहित बनाने का पूरा प्रयास मंडल द्वारा किया गया है, फिर भी पुस्तक की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए शिक्षा में रुचि रखनेवालों से प्राप्त सुझावों का मंडल स्वागत करता है।

डॉ. एम. आई. जोषी	**डॉ. नीतिन पेथाणी**
नियामक	कार्यवाहक प्रमुख
दिनांक. : 16-10-2017	गांधीनगर

प्रथम आवृत्ति : 2017 **पुनः मुद्रण :** 2018

प्रकाशक : गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, 'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर की ओर से डॉ. एम. आई. जोषी, नियामक
मुद्रक :

मूलभूत कर्तव्य

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह *

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो; ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

(ट) माता–पिता या संरक्षक के रूप में 6 से 14 वर्ष तक की उम्रवाले अपने बालक या प्रतिपाल्य को यथास्थिति शिक्षा का अवसर प्रदान करे।

* भारत का संविधान : अनुच्छेद 51-क

अनुक्रमणिका

1.	दो पद	(मुक्तक)	रैदास	1
2.	जिन्दगी और गुलाब के फूल	(कहानी)	उषा प्रियंवदा	4
3.	कृष्णभक्ति के पद	(मुक्तक)	1. सूरदास 2. मीराबाई	13
4.	तुम कब जाओगे, अतिथि	(व्यंग्य)	शरद जोशी	18
5.	वाटिका-प्रसंग	(महाकाव्य-अंश)	तुलसीदास	22
6.	उत्साह	(निबंध)	रामचन्द्र शुक्ल	25
7.	रानी और कानी	(कविता)	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	32
8.	अशफ़ाक उल्ला खाँ	(आत्मकथांश)	रामप्रसाद बिस्मिल	35
9.	समर शेष है	(कविता)	रामधारी सिंह 'दिनकर'	40
10.	शत्रु	(कहानी)	सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	44
11.	क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं !	(गीत)	हरिवंशराय 'बच्चन'	48
12.	एवरेस्ट : मेरी शिखर यात्रा	(यात्रावर्णन)	बचेन्द्रीपाल	51
13.	मैं तुम लोगों से दूर हूँ	(कविता)	गजानन माधव 'मुक्तिबोध'	58
14.	डायरी का एक पन्ना	(डायरी)	मोहन राकेश	61
15.	विश्वशांति (अनूदित)	(कविता)	उमाशंकर जोशी	64
16.	विवेक वाणी	(व्याख्यान)	स्वामी विवेकानंद	67
17.	शबरी	(खंडकाव्य-अंश)	नरेश मेहता	71
18.	गिरगिट	(कहानी)	अंतोन चेखव	74
19.	डेली पैसेंजर	(कविता)	अरुण कमल	79
20.	हानूश	(नाटक-अंश)	भीष्म साहनी	82
21.	किस्सा जनतंत्र	(कविता)	सुदामा पांडेय 'धूमिल'	92
22.	द	(निबंध)	प्रतापनारायण मिश्र	96
23.	चक्रवात	(कविता)	ओमप्रकाश वाल्मीकि	99
24.	जहाँ आकाश नहीं दिखाई देता	(रिपोर्ताज)	विष्णु प्रभाकर	103
25.	उजले दिन जरूर	(कविता)	वीरेन डंगवाल	108
26.	तताँरा-वामीरो	(लोक-कथा)	लीलाधर मंडलोई	111
27.	याद करेगी धरती	(कविता)	निर्मला गर्ग	117
28.	दान की बात	(उपन्यास अंश)	रघुवीर चौधरी	120
29.	गज़ल	(गज़ल)	ज्ञानप्रकाश विवेक	129
30.	नदी बहती रहे	(लेख)	भगवतीशरण सिंह	132
31.	प्रेमपत्र	(कविता)	बद्री नारायण	137

- भाषा-विश्लेषण (व्याकरण) : संधि, समास, अलंकार 140
- रचनात्मक लेखन : निबंध लेखन, सूचना लेखन, अनौपचारिक पत्र लेखन 146
- प्रयोजनमूलक हिन्दी : सार लेखन, संचार माध्यम, हिन्दी की विविध भूमिकाएँ, डायरी-लेखन 151

पूरक वाचन

1.	ऐ अजनबी	(कविता)	राही मासूम रजा	158
2.	काबुलीवाला	(कहानी)	रवीन्द्रनाथ टैगोर	160
3.	मेरे हिमालय के पासबानो	(गीत)	गोपालदास 'नीरज'	166
4.	राजर्षि का जीवन-दर्शन	(संस्मरण)	माखनलाल चतुर्वेदी	168

●●●

1 पद

रैदास

(जन्म : सन् 1388 ई.; निधन : 1518 ई.)

(अनुमानित)

संत रैदास का जन्म काशी में हुआ था। निम्न वर्ग में जन्म पाकर भी उत्तम जीवन शैली, सदाचरण तथा उत्कृष्ट साधना के कारण वे भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में आज भी आदर के साथ याद किए जाते हैं। अपनी संत प्रकृति के अनुरूप ही उन्होंने प्रयाग, मथुरा, वृंदावन, दिल्ली, पुष्कर इत्यादि स्थानों का परिभ्रमण किया था।

रैदास-रचित लगभग दो सौ पद मिलते हैं। वे गुरुभक्ति, नाम-स्मरण, प्रेम, कर्तव्यपालन तथा सत्संग को महत्व देते हैं। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाह्य विधानों का विरोध करते हुए आभ्यंतरिक साधना पर बल दिया। उनकी भाषा ब्रजभाषा ही है, किन्तु उसमें अवधी, खड़ीबोली, राजस्थानी और उर्दू-फ़ारसी शब्दों का भी मिश्रण है। भावों की तन्मयता के कारण उनकी भाषा प्रभावशाली बनी है।

इस पद में रैदास ने ईश्वर-भक्ति के लिए सभी आशाओं को छोड़कर एकमात्र ईश्वर की शरण में जाने का मार्ग सुझाया है। ईश्वर के प्रति एकात्मभाव से समर्पण ही ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र साधन है।

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ।
गावनहार को निकट बताऊँ।
जब लगि है इहि तन की आसा, तब लगि करै पुकारा।
जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की तब को गावनहारा॥
जब लगि नदी न समुद्र समावै, तब लगि बढ़ै हँकारा॥
जब मन मिल्यौ रामसागर सौं, तब यह मिटी पुकारा॥
जब लगि भगति मुकति की आसा, परमतत्व सुनि गावै॥
जहँ जहँ आस धरत है इहि मन, तहँ तहँ कछु न पावै॥
छाँड़ै आस निरास परम पद, तब सुख सतिकर होई॥
कहि रैदास जासौं और करत है, परम तत्व अब सोई॥

शब्दार्थ-टिप्पण

गावनहार गानेवाला **लगि** तक **इहि** इस **को** कौन **हँकारा** अहंकार, घमंड, **मुकति** मुक्ति, मोक्ष **छाड़ै** छोड़कर, **सतिकर** निश्चय ही।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर दीजिए :

(1) रैदास अब क्यों गाना नहीं चाहते ?

(2) आदमी ईश्वर को कब तक पुकारता रहता है ?

(3) नदी में अहंकार कब तक रहता है ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्य में दीजिए :

(1) वास्तविक सुख कब मिलता है ?

(2) मन की पुकार कब मिट जाती है, क्यों ?

3. नीचे दी गई पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए :

(1) जहँ-जहँ आस धरत है, इहि मन तहँ-तहँ कछु न पावै।

(2) जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की, तब को गावनहारा।

4. समानार्थी शब्द लिखिए :

अहंकार, मयूर, सत्य।

विद्यार्थी-प्रवृत्ति

- पाठ में दिए गए पद को याद करके कक्षा में गाकर सुनाइए।

शिक्षक-प्रवृत्ति

- विद्यार्थियों से कबीर, गुरुनानक के पाँच पदों का संकलन तैयार करवाइए।

2 जिन्दगी और गुलाब के फूल

उषा प्रियंवदा

(जन्म : सन् 1930 ई.)

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के ज़िले कानपुर में हुआ था। ये उन कथाकारों में से एक हैं, जिनके उल्लेख के बिना हिंदी साहित्य का इतिहास पूरा नहीं होता। इन्होंने अपनी उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की। आज के युग में संबंधों में दिखायी देनेवाली विडंबनाओं को उजागर करनेवाली इनकी कहानियाँ 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल' और 'वापसी' बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके कहानी-संग्रहों में 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल' के अलावा 'कितना बड़ा झूठ' और 'एक कोई दूसरा' भी काफ़ी प्रसिद्ध हैं। इनके उपन्यास 'पचपन खंभे, लाल दीवारें' पर धारावाहिक भी बन चुका है।

यहाँ संकलित 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल' कहानी आज के समय की उस विडंबना को सामने लाती है, जिसमें रिश्ते रक्त से नहीं, बल्कि पैसों से तय होते हैं। इसमें सुबोध, उसकी माँ, उसकी बहन वृंदा और उसकी प्रेमिका शोभा की कहानी है, आर्थिक परिस्थितियों के बदल जाने से जिनके रिश्ते भी बदल जाते हैं। सुबोध के पास जब तक नौकरी रहती है, उसका घर उसे ही केंद्र बनाकर चलता है, लेकिन जैसे ही उसकी नौकरी छूट जाती है और उसकी बहन वृंदा की नौकरी लग जाती है, उसका घर वृंदा को केंद्र बनाकर चलने लगता है। ऊपर से उसकी प्रेमिका शोभा की सगाई भी कहीं और हो जाती है।

सुबोध काफी शाम को घर लौटा। दरवाज़ा खुला था, बरामदे में हल्की रोशनी थी, और चौके में आग की लपटों का प्रकाश था। अपने कमरे में घुसते ही उसे वह खाली-खाली-सा लगा। दूसरे क्षण ही वह जान गया कि कमरे का कालीन निकाल दिया गया है और किनारे रखी हुई मेज़ भी नहीं है। मेज़ पर कागज़ के फूलों का जो गुलदस्ता रहता था, वह कुछ ऐसे कोण से खिड़की पर रखा था कि लगता था, जैसे मेज़ हटाते वक्त उसे वहाँ वैसे ही रख दिया गया हो।

उसने बहुत कोमलता से गुलदान उठा लिया। कागज़ के फूल थे तो क्या, गुलदान तो बहुत बढ़िया कट ग्लास का था। पहले कभी-कभी शोभा अपने बाग के गुलाब लगा जाती थी, पर अब तो इधर, कई महीनों से यही बदरंग फूल थे और शायद यही रहेंगे। सुबोध ने फिर खिड़की पर गुलदान रखते हुए सोचा, हाँ, यही रहेंगे, क्योंकि शोभा की सगाई हो गई थी, और उसका भावी पति किसी अच्छी नौकरी पर था। सुबोध ने कोट उतारकर खूँटी पर टाँग दिया...आखिर कब तक शोभा के पिता उसके लिए अपनी लड़की कुँवारी बैठाए रखते ?...सुबोध खिड़की के पार देख रहा था—धूल-भरी साँझ, थके चेहरे, बुझे हुए मन...

फिर वह माँ के पास आया। उसकी माँ चौके में चूल्हे के पास बैठी थी। वह वहीं पीढ़े पर बैठ गया। कुछ देर कोई नहीं बोला। माँ ने दो-एक बार उसे देखा ज़रूर, पर कुछ कहा नहीं, पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रही, ऐसी मूर्ति जिसकी केवल आँखें जीवित थीं।

एकाएक सुबोध पूछ बैठा, ''अम्मा, मेरे कमरे का कालीन कहाँ गया ? धूप में डाला था क्या ?''

बाएँ हाथ से धोती का पल्ला सिर पर खींचती हुई माँ बोली, ''वृन्दा अपने कमरे में ले गई है। उसकी कुछ सहेलियाँ आज खाने पर आएँगी।''

सुबोध को अपने पर आश्चर्य हुआ कि वह इतनी-सी बात पहले ही क्यों न समझ गया ? उसकी सारी चीज़ें वृन्दा के कमरे में जा चुकी थीं, सबसे पहले पढ़ने की मेज़, फिर घड़ी, आरामकुर्सी और अब कालीन और छोटी मेज़ भी। पहले अपनी चीज़ वृन्दा के कमरे में सजी देख उसे कुछ अटपटा लगता था, पर अब वह अभ्यस्त हो गया था यद्यपि उसका पुरुष-हृदय घर में वृन्दा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था।

उसे अनमना हो आया देख माँ ने कहा, ''तुम्हारे इन्तज़ार में मैंने चाय भी नहीं पी। अब बना रही हूँ, फिर कहीं चले मत जाना।'' और पतीली का ढंकना उठाकर देखने लगी।

सुबोध दोनों हाथों की उँगलियाँ एक-दूसरे में फँसाए बैठा रहा। उसके कन्धे झुक गए और उसके चेहरे पर विषाद और चिन्ता की रेखाएँ गहरी हो गई। सशंक नेत्रों से माँ उसे देखती रही। मन-ही-मन कई बातें सोची। कहने की, मौन का अन्तराल तोड़ने की, पर न जाने क्यों वाणी न दे सकी। उसकी आँखों के सामने ही सुबोध बदलता जा रहा था। इस समय उसके नेत्र माँ पर अवश्य थे, पर वह उनसे हज़ारों मील दूर था। मौन रहकर जैसे वह अपने अन्दर अपने-आपसे लड़ रहा हो। काश, सुबोध फिर वही छोटा-सा लड़का हो जाता, जिसके त्रास वह अपने स्पर्श से दूर कर देती थी। पर सुबोध जैसे अब उसका बेटा नहीं था, वह एक अनजान, गम्भीर, अपरिचित पुरुष हो गया था, जो दिन-भर भटका करता था, रात को आकर सो रहता था। सुख के दिन उसने भी जाने थे। अच्छी नौकरी थी, शोभा थी । अपने पुराने गहने तुड़ाकर माँ ने कुछ नई चीज़ें बनवा ली थीं, और अब वे नये बुन्दे और बालियाँ, हार और कंगन बक्स में पड़े थे। शोभा की शादी होने वाली थी और सुबोध बदलता जा रहा था।

दो धुंधली, जल-भरी आँखें दो उदास आँखों से मिलीं। उनमें एक मूक अनुनय थी। सुबोध ने माँ के चेहरे को देखा और मुसकरा दिया। शब्द निरर्थक थे, दोनों एक-दूसरे की गोपन व्यथा से परिचित थे। उनमें एक मूक समझौता था। माँ ने इधर बहुत दिनों से सुबोध से नौकरी के विषय में नहीं पूछा था, और सुबोध भी अपने-आप यह प्रसंग न छेड़ना चाहता था।

उसने कहा, ''देखो, शायद पानी खौल गया।''

माँ चौंकी, दो बार जल्दी-जल्दी पलक झपकाए। फिर खड़ी होकर आलमारी से चायदानी उठाई। उसे गर्म पानी से धोया, बहुत सावधानी से चाय की पत्ती डाली और पानी उंड़ेला। फिर उसपर टीकौजी लगा दी। वह टीकौजी वृन्दा ने काढ़ी थी और उसकी शादी की आशा में बरसों माँ बक्स में रखे रहीं। अब उसे रोज़ व्यवहार करना माँ की पराजय थी। उससे बड़ी पराजय थी सुबोध की, जो अपनी छोटी बहन की शादी नहीं कर पाया था। टीकौजी पर एक गुलाब का फूल बना था और सुबोध उन गुलाब के फूलों की याद कर रहा था, जो शोभा उसके कमरे में सजा जाती थी, उन बाली और बुन्दों की सोच रहा था, जो शोभा अब नहीं पहनेगी...

दूध गरम कर और प्याला पोंछकर माँ ने सुबोध के आगे रख दी। सुबोध पीढ़े पर पालथी मारकर बैठ गया, और चाय छानने लगा।

माँ अपनी कोठरी में जाकर कुछ खटर-पटर कर रही थी। ज़रा देर में ही एक तश्तरी में चाँदी का वर्क लगा हुआ सेब का मुरब्बा लाकर माँ ने उसके सामने रख दिया और बड़े दुलार से कहा, ''खा लो !''

अपने विचार पीछे ठेलकर, कुछ सुस्त हो, हँसते हुए सुबोध ने कहा, ''अरे अम्मा ! बड़ी खातिर कर रही हो ! क्या बात है ?''

माँ ने स्नेह-कातर कंठ से कहा, ''तुम कभी ठीक वक्त से आते भी हो ! रात को दस-ग्यारह बजे आए। ठण्डा-सूखा खा लिया। सुबह देर से उठे, दोपहर को फिर गायब। कब बनाऊँ, कब दूँ ?''

यह चर्या तो सुबोध की पहले भी थी। तब वृन्दा और माँ दोनों उसके इंतज़ार में बैठी रहती थीं। वृन्दा हमेशा बाद में खाती थी। सुबोध की दिनचर्या के ही अनुसार घर के काम होते थे। पर तब वृन्दा नौकरी नहीं करती थी, तब सुबोध बेकार न था। अब खाना वृन्दा की सुविधा के अनुसार बनता था। सुबह जल्दी उठना होता था, इसलिए रात को जल्दी खाकर सो जाती थी। अब सुबोध जब साढ़े आठ पर सोकर उठता तो आधा खाना बन चुकता था। जब नौ बजे वृन्दा खा लेती, तो वह चाय पीता। पहले जब तक वह स्वयं अखबार न पढ़ लेता था, वृन्दा को अख़बार छूने की हिम्मत न पड़ती थी, क्योंकि वह हमेशा पन्ने गलत तरह से लगा देती थी। अब उसे अखबार लेने वृन्दा के कमरे में जाना पड़ता था और इसीलिए उसने घर का अखबार पढ़ना छोड़ दिया था।

जूठे बर्तन समेटते हुए माँ ने कुछ कहना चाहा, पर रुक गई। उसका असमंजस भाँपकर सुबोध ने पूछा, ''क्या है ?''

प्याला धोते हुए मंद स्वर में माँ ने कहा, ''घर में तरकारी कुछ नहीं है।''

सुबोध ने उठकर कील पर टँगा मैला थैला उतार लिया। माँ ने आंचल की गांठ खोलकर मुड़ा-तुड़ा एक रुपये का नोट उसे थमा दिया और कहा, ''जरा जल्दी आना ! अभी सारी चीजें बनाने को पड़ी हैं।''

सुबोध कोट पहने बिना ही बाज़ार चल दिया। यह पतलून वह काफी दिनों से पहन रहा था। कमीज़ के फटे हुए कफ और कालर काफी गन्दे थे, पर उसने परवाह नहीं की। पर दोनों हाथों से थैले का मुँह पकड़कर उसमें गन्दी तराजू से मिट्टी-लगे आलू डलवाते हुए सुबोध को एक झटका-सा लगा। उसके पास ही किसी का पहाड़ी नौकर भाव पूछ रहा था। उसके चीकट बालों से माथे पर तेल बह रहा था, मुँह से बीड़ी का कड़वा धुआँ निकल रहा था। वह भी थैला लिए था और तरकारी लेने आया था। सुबोध अचानक ही सोच उठा कि वह कहाँ से कहाँ आ पहुँचा है ! अपने अफसर की अपमानजनक बात सुनकर तो उसने अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए इस्तीफा दे दिया था, लेकिन अब कहाँ है वह आत्मसम्मान ? छोटी बहन पर भार बनकर पड़ा हुआ है। उसे देखकर माँ मन ही मन घुलती रहती है। ज़िन्दगी ने उसे भी गुलाब के फूल दिए थे, लेकिन उसने स्वयं ही उन्हें ठुकरा दिया और अब शोभा भी.....

हाथ झाड़कर सुबोध ने पैसे दिए और चल पड़ा। उस सबके बावजूद उसके अन्दर एक तुष्टि का हल्का-सा आलोक था कि इस्तीफा देकर उसने ठीक ही किया। उसके जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति अपमान का कड़वा घूँट कैसे पी लेता ? स्वाभिमान ? सुबोध के ओंठ एक कड़वी मुस्कान से खिंच उठे। वाह रे स्वाभिमानी ! उसने अपने-आपसे कहा। उसे वे सब बातें स्पष्ट होकर फिर याद आ गईं, वे बातें, जो रह-रहकर टीस उठती थीं। सुबोध स्मृति का एलबम खोलने लगा। हर चित्र स्पष्ट था।

नौकरी छोड़कर वह कुछ महीने घर नहीं लौटा, वहीं दूसरी नौकरी खोजता रहा और जब लौटा तो उसने घर का चित्र ही बदला हुआ पाया। उसकी अनुपस्थिति में वृन्दा ने उसकी मेज़ ले ली थी और उसके लौटने

पर वृन्दा ने अवज्ञा से कहा था, ''दादा, आप क्या करेंगे मेज़ का ? मुझे काम पड़ेगा।''

सुबोध कुछ तीखी-सी बात कहते-कहते रुक गया। कई साल में घिसट-घिसटकर बी.ए., एल.टी. (लाइसेंस ऑफ टीचिंग) कर लेने और मास्टरनी बन जाने से ही जैसे वृन्दा का मेज़ पर हक हो गया हो ! कोई अध्यापिका होने से ही पुस्तकों का प्रेमी नहीं हो जाता। सुबोध की उस मेज़ पर अब जूड़े के काँटे, नेल-पालिश की शीशी और गर्द-भरी किताबें पड़ी रहती थीं और फिर कुछ दिनों बाद माँ ने कहा, ''वृन्दा को रोज़ स्कूल जाने में देर हो जाती है। अपनी अलार्म घड़ी दे दो, सुबोध !''

सुबोध ने कठोर होकर कहा था, ''नई घड़ी खरीद क्यों नहीं लेती ? उसे क्या कमी है ?''

माँ ने आहत और भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से उसे देखकर कहा, ''उसके पास बचता ही क्या है ! तुम खर्च करते होते तो जानते !''

''नहीं, मुझे क्या पता ! हमेशा से तो वृन्दा ही घर का खर्च चलाती आई है। मैं तो बेकार हूँ, निठल्ला।'' और झुँझलाकर सुबोध ने घड़ी उसे दे दी थी।

सबसे अधिक आश्चर्य तो उसे वृन्दा पर था। अक्सर वह सोच उठता कि यह वही वृन्दा है, जो उसके आगे-पीछे घूमा करती थी, उसके सारे काम दौड़-दौड़कर किया करती थी ! जब भी उसने चाय माँगी, वृन्दा ने चाय तैयार कर दी। और अब ? एक रात ज़रा देर से आने पर उसने सुना, वृन्दा बिगड़कर माँ से कह रही थी, ''काम न धन्धा, तब भी दादा से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा लें। तुम कब तक जाड़े में बैठोगी, माँ ? उठाकर रख दो, अपने-आप खा लेंगे।''

उसके बाद सुबोध रात को चुपचाप आता। ठंडा खाना खाकर अपने कमरे में लेट जाता। सुबह जग जाने पर भी पड़ा रहता और वृन्दा के चाय पी लेने पर उठकर चाय पीता। बाज़ार से सौदा ला देता। मैले ही कपड़े पहनकर बाहर चला जाता। और जब थक जाता, तो खिड़की के बाहर देखने लगता।

माँ प्रतीक्षा में दरवाज़े पर खड़ी थी। उनके हाथ में थैला देकर वह अपने कमरे में चला गया। कमरा उसे फिर नग्न और सूना-सा लगा। जूते उतारकर वह चारपाई पर लेट गया। चारपाई बहुत ढीली थी। उसके लेटते ही दरी सिकुड़ गई, तकिया नीचे खिसक आया। दरी की सिकुड़नें पीठ में गड़ती रहीं। सुबोध की आँखें बन्द थीं। हाथ शिथिल और कान अन्दर और बाहर के विभिन्न स्वर सुनते रहे। खिड़की के पास से गुज़रते दो बच्चे, सड़क पर किसी राही की बेसुरी बाजती बाँसुरी, खटखट करते दो भारी जूते, अन्दर बर्तन की हल्की खटपट, तरकारी में पानी पड़ने की छन्न और खींची जाती चारपाई के पायों की फर्श से रगड़...।

तभी बाहर का दरवाज़ा अचानक खुला और वृन्दा ने कुछ तीखे-से स्वर में पूछा, ''अम्मा, दादा घर में हैं ?''

सुबोध सुनकर भी न उठा। माँ का उत्तर सुन वृन्दा उसके कमरे के दरवाज़े पर खड़ी होकर बोली, ''दादा, ताँगेवाले को रुपया भुनाकर बारह आने दे दो।''

सुबोध ने चप्पलों में पैर डाले, उसके हाथ से रुपया लिया और बाहर आया।

उसकी दृष्टि सामने खड़ी शोभा से मिल गई। उसके नमस्कार का संक्षिप्त उत्तर दे वह बाहर आ गया। नोट

तुड़ाकर ताँगे वाले को पैसे दिए और फिर अन्दर नहीं गया। पड़ोस में एक परिचित के घर बैठ गया, और शतरंज की बाज़ी देखने लगा।

वहाँ बैठे-बैठे जब उसने मन में अन्दाज़ लगा लिया कि अब तक शोभा और निर्मला खाना खाकर चली गई होंगी, तो वह घर आया। सड़क पर सन्नाटा हो गया था। बत्तियों के आस-पास धुँधले प्रकाश का घेरा था, और पानवाला, ग्राहकों की प्रतीक्षा में चुप और स्थिर बैठा था।

वृन्दा ने झुंझलाकर कहा, ''कहाँ चले गए थे, दादा ? शोभा और निर्मला कब से घर जाने को बैठी हैं ! तुम्हें पहुँचाने जाना है।''

''मुझे मालूम नहीं था,'' सुबोध ने कहा।

''जैसे कभी शोभा को घर पहुँचाया नहीं है !'' वृन्दा ने कहा।

''तब,'' सुबोध ने सोचा, तब शोभा की सगाई कहीं और नहीं हुई थी, तब वह बेकार न था। शोभा उससे शरमाती थी, पर उसके गुलदान में फूल लगा जाती थी। माँ नये गहने बनवा रही थीं, और वृन्दा अपने कमरे में बैठी-बैठी कुढ़ती थी, क्योंकि बदसूरत थी और उससे कोई शादी करने को राज़ी नहीं होता था...

''अच्छा तो चलें,'' सुबोध ने शोभा की ओर नहीं देखा।

पर शोभा बोल पड़ी, ''हमें जल्दी नहीं है। आप खाना खा लीजिए।''

माँ ने कड़ाही चूल्हे पर चढ़ा दी। वृन्दा निर्मला को लेकर अपने कमरे में चली गई। सुबोध बैठ गया और शोभा ने उसके आगे तिपाई रख दी। फिर उसके रेशमी साड़ी का आँचल कमर में खोंस लिया और थाली लाकर उसके सामने रख दी। सुबोध नीची नज़र किए खाने लगा। चौके से बरामदे, बरामदे से चौके में बार-बार जाती हुई शोभा की साड़ी का बार्डर उसे दिखाई देता रहा, हरी साड़ी, जोगिया बार्डर, जिसपर मोर और तोते कढ़े हुए थे। कभी-कभी एड़ियाँ भी झलक उठतीं, उजली, चिकनी एड़ियाँ। सुबोध को लगता कि वह अतीत में पहुँच गया है। और शोभा वही है, वही जिससे कभी उसकी प्यार की बातें नहीं हुई, पर जो अनायास ही उससे शरमाने लगी थी। शायद उसे पता चल गया था कि उसके पिता ने सुबोध की बातचीत शुरू कर दी है...और शायद अब तक शादी भी हो जाती, अगर सुबोध को कोई दूसरी नौकरी मिल जाती, या अगर सुबोध पहली अच्छी नौकरी न छोड़ता...

सुबोध ने खाना बन्द कर दिया। पानी पीकर, हाथ धोने उठा, तो शोभा झट से हाथ धुलाने लगी। उसकी आँखों में विनयभरी कातरता थी, उसके मुख पर उदासी, पर उसके बालों से सुबास आ रही थी।

जब वह ताँगा लेकर आया, तो शोभा माँ के पास चुप खड़ी थी और माँ उसके सिर पर हाथ फेर रही थी।

रास्ते-भर दोनों चुप रहे। सबसे पहले निर्मला का घर आया, उसके उतर जाने पर शोभा ने आँसू-भरे कंठ से कहा, ''आप यहाँ पीछे आ जाइए न !'' वह उतरकर पीछे आ गया, तब बोली, ''कुछ बोलेंगे नहीं ?''

''क्या कहूँ ?'' सुबोध ने उसकी ओर मुड़कर उसे देखते हुए कहा।

शोभा की आँखें छलक रही थीं। पोंछकर कहा, ''मैंने तो पिताजी से बहुत कहा।...फिर आखिर मैं क्या करती ?''

''मैं तो कुछ भी नहीं कह रहा हूँ। इस बात को स्वीकार कर लो कि मैं ज़िंदगी में फेलियर कम्पलीट

फेलियर। कुछ नहीं कर सका ! जैसे मेरी ज़िन्दगी में अब फुलस्टाप लग गया है। अब ऐसे ही रहूँगा। तुम्हारे फादर ने ठीक ही किया। तुम सुखी होओगी। प्यार से बड़ी एक और आग होती है, भूख की ! वह आग धीरे-धीरे सब कुछ लील लेती है...''

''आप इतने बिटर क्यों हो गए हैं ?''

''ज़िन्दगी ने ही मुझे बिटर बना दिया है'', फिर जैसे जागकर ताँगे वाले से कहा, ''अरे बड़े मियाँ ! लौटा ले चलो, घर तो पीछे छूट गया।''

शोभा उतरी। कुछ क्षण अनिश्चित-सी खड़ी रही। सुबोध के हाथ बढ़े, पर फिर पीछे लौट आए, ''अच्छा, शोभा।''

''नमस्ते,'' शोभा ने कहा और वह अन्दर चली गई। ताँगे में अकेला सुबोध सड़क पर घोड़े की एकरस टापों के शब्द को सुन रहा था। कभी-कभी ताँगेवाला खाँस उठता और वह खाँसी उसका शरीर झिंझोड़ जाती। अँधेरा...खाँसी...और आखिरी सपने की भी मौत !

सुबह उठकर सुबोध ने सबसे पहले बरामदे में बैठे धोबी को देखा। जितनी देर में उसके लिए चाय बनी, उसने अपने सारे गन्दे कपड़े इकट्ठे कर, उनका ढेर लगा दिया। आलमारी में सिर्फ एक साफ कमीज़ बची थी, पीठ पर फटी हुई। उसे ढकने के लिए सुबोध ने कोट पहन लिया। कोट को भी काफी दिनों से धोबी को देने का इरादा था, परन्तु अब जब तक धोबी कपड़े लाए, तब तक यही सही।

चाय पीकर वह बाहर चला आया। कोट की जेबों की तलाशी करने पर उँगलियाँ एक इकन्नी से जा टकराई। पानवाले की दुकान पर सिगरेट खरीदा और जलाकर एक गहरा कश खींचा, और दो-एक जगह रुककर वापस चला। रास्ते में उसे धोबी मिला, और उसने सुबोध को दुबारा सलाम किया।

''कपड़े ज़रा जल्दी लाना, समझे ?'' कुछ रोब से सुबोध ने कहा।

''अच्छा बाबूजी,'' धोबी चला गया।

कमरे में घुसते ही मैले कपड़ों का ढेर उसे वैसे ही दिखाई पड़ा, जैसा कि छोड़ गया था। उसने वहीं रुककर पुकारा, ''अम्मा ! मेरे कपड़े धुलने नहीं गए।''

''पता नहीं, बेटा ! वृन्दा दे रही थी, उससे कहा भी था कि तुम्हारे भी दे...''

सुबोध को न जाने कहाँ का गुस्सा चढ़ आया। चीखकर बोला, ''कितने दिनों से गन्दे कपड़े पहन रहा हूँ ! पन्द्रह दिन में नालायक धोबी आया, तो उसे भी कपड़े नहीं दिए गए। तुम माँ-बेटी चाहती क्या हो ? आज मैं बेकार हूँ, तो मुझसे नौकरों-सा बर्ताव किया जाता है ! लानत है ऐसी ज़िन्दगी पर !''

माँ त्रस्त हो उठी। जब सुबोध का कष्ठ-स्वर इतना ऊँचा हो गया कि बाहर तक आवाज़ जाने लगी, तो वह रो दी। उसने कुछ कहना चाहा, मगर सुबोध ने अवसर नहीं दिया। कहता गया, ''मुझे मुफ्त का नौकर समझ लिया है ? पहले कभी तुमने मुझे यह सब काम करते देखा था ?'' फिर उसके कंठ की नकल करता हुआ बोला, ''घर में तरकारी नहीं है ! वृन्दा की सहेलियाँ खाना खाएँगी। उधर हमारी बहन है कि हुकूमत किया करती है ! अब मैं समझ गया हूँ कि मेरी इस घर में क्या कद्र है। मैं आज ही चला जाऊँगा। तुम दोनों चैन से रहना।''

कहता-कहता वह घर से बाहर आ गया। अपनी छटपटाहट में उसके अन्दर एक तीव्र विध्वंसक प्रवृत्ति ज़ग उठी थी। उसका मन चाह रहा था कि जो कुछ भी सामने, पड़े, उसे तहस-नहस कर डाले। वह चलता गया और उसी धुन में एक साइकिल सवार से टकरा गया। वह गिर पड़ा। उसके ऊपर साइकिल आ गई और वह व्यक्ति सबसे ऊपर । जब उसकी कोहनियाँ खुरदरी सड़क से छिलीं, और एक तीव्र पीड़ा हुई, तो उसका ध्यान बँटा। वह कुछ हक्का-बक्का-सा रह गया। उसने पाया कि उस व्यक्ति ने उससे तकरार नहीं की, अपने कपड़े झाड़े और साइकिल उठाते हुए कहा, ''भाई साहब, ज़रा देखकर चला कीजिए। चोट तो नहीं आई।''

अगर वह लड़ता तो उस मूड में शायद सुबोध मार-पीट करने को उतारू हो जाता। पर उसकी अप्रत्याशित विनम्रता से सुबोध ठिठककर रह गया।

जब सुबोध ने उठकर चलने की कोशिश की, तो पाया कि बायाँ पैर सूजने लगा है। लंगड़ाता हुआ वह पार्क की बेंच पर आकर बैठ गया। उसकी दाहिनी कोहनी से खून टपक रहा था। ज़रा-सा भी हिलने से पैर में तीव्र पीड़ा होने लगती थी। उसने संभालकर पैर बेंच पर रख लिया और लेट गया।

अपना ध्यान पीड़ा से हटाने के लिए वह फूलों को देखने लगा। उसकी बेंच के पास ही गुलाब की घनी वेल थी, जिसमें हल्के पीले फूल थे। दर्द बढ़ता जा रहा था। उसने हिलना-डुलना भी बन्द कर दिया। कुछ देर स्थिर पड़े रहने से दर्द में विराम हुआ, तो उसके ख्याल फिर सवेरे की घटना पर केन्द्रित हो गए।

उसका पैर हिला और दर्द की एक तेज़ लहर उठकर पूरे बायें पैर में व्याप्त हो गई। सुबोध ने ओंठ भींच लिए ।

जाड़ों की धूप थी पर लोहे की बेंच धीरे-धीरे गरम होती जा रही थी और बेंच का एक उठा हुआ कोना उसकी पीठ में गड़ रहा था। पर वह हिला-डुला नहीं। आँखें खोलकर सड़क की ओर देखा, तो स्कूल जाते हुए बच्चे, साइकिलें, खोमचेवाले...उसने आँखें बन्द कर लीं। जब पैर का दर्द कम होता, तो कोहनी छरछराने लगती। पर इस आत्मपीड़न से जैसे उसे कुछ सन्तोष-सा हो रहा था।

वह कब सो गया, उसे पता नहीं। जब आँखें खुलीं, तो सूरज सर पर था और बेंच तप रही थी। वह उठकर, बायाँ पैर घसीटता और दर्द सहता हुआ छाँह में घास पर लेट गया। उसपर एक बेहोशी-सी छाई जा रही थी। घास का स्पर्श शीतल था, सुखदायी हवा में गुलाब के फूलों की सुबास थी, पर उसे चैन न था।

उसे अचानक माँ का ध्यान आ गया। शायद वह चिन्तित दरवाज़े पर खड़ी हो, शायद वह उसके इन्तज़ार में भूखी हो। उसने एक लम्बी साँस ली और बाँहें सिर के नीचे रख लीं।

दिन कितना लम्बा हो गया था कि बीत ही नहीं रहा था। जैसे एक युग के बाद आकाश में एक तारा चमका और फिर अनेक तारे चमक उठे। सुबोध घास से उठकर फिर बेंच पर लेट गया। उसके सिर में भारीपन था, मुँह में कड़वाहट, पैर में जैसे एक भारी पत्थर बंधा था। सारा दिन हो गया था, पर कोई खोजता हुआ नहीं आया। वृन्दा को तो पता था कि वह अक्सर पार्क में बैठा करता है। मगर उसे क्या फिक्र ?

पार्क से लोग उठ-उठकर जाने लगे थे। बच्चे, उनकी आयाएँ, स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए घूमने आनेवाले प्रौढ़, दो-दो चोटियाँ किए, हँस-हँसकर एक-दूसरे पर गिरती मुहल्ले की लड़कियाँ...पार्क शान्त हो गया। हरी घास पर बच गए मूँगफली के छिलके, पुड़ियों के कागज़ के टुकड़े, तोड़े गए फूलों की मसली हुई पंखुड़ियाँ...

तीन फाटक बन्द कर लेने के बाद चौकीदार सुबोध की बेंच के पास आकर खड़ा हो गया।

''अब घर जाओ, बाबू, पार्क बन्द करने का टेम हो गया।''

बिना कुछ कहे सुबोध उठ गया। दो-एक कदम लड़खड़ाया, फिर चलने लगा। हर बार जब बायाँ पैर रखता, तो दर्द होता। धीरे-धीरे लंगड़ा-लंगड़ाकर वह पार्क से बाहर निकल आया।

दरवाज़ा खुला था। बरामदे में मद्धिम रोशनी थी। चौके में अंधेरा। वह अपने कमरे में आया। कोने में मैले कपड़ों का ढेर था। ढीली चारपाई, गन्दा बिस्तर, तिपाई पर खाना ढंका हुआ रखा था।

सुबोध चारपाई पर बैठ गया, और तिपाई खींचकर लालचियों की तरह जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कौर खाने लगा।

शब्दार्थ-टिप्पण

अनुनय अनुरोध **कालीन** गलीचा **एकाएक** अचानक **हुकूमत** शासन **अभ्यस्त** आदी, आदती **विषाद** दु:ख, उदासी **अंतराल** मध्य का अवकाश **इस्तीफा** त्यागपत्र **तुष्टि** संतोष।

मुहावरे

आँखें मिलना प्रेम हो जाना **तहस-नहस कर देना** नष्ट कर देना **खटर-पटर** काम करते समय होने वाली ध्वनि **आँखें छलक आना** भावुक हो जाना

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए :

(1) शोभा की सगाई सुबोध के साथ क्यों नहीं हो पाई ?

(2) सुबोध ने नौकरी क्यों छोड़ दी ?

(3) शाम को घर लौटने पर सुबोध ने अपने कमरे में क्या परिवर्तन देखा ?

(4) माँ ने अपने गहने तुड़वाकर क्या बनवाए थे ?

(5) 'उसके पास बचता ही क्या है !' कौन, किससे कहता है ?

(6) वृन्दा ने धोबी को सुबोध के कपड़े क्यों नहीं दिए ?

(7) सुबोध ने अखबार पढ़ना क्यों छोड़ दिया ?

(8) वृन्दा की कौन-सी सहेलियाँ उसके घर आई थीं ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के दो-तीन वाक्यों में उत्तर लिखिए :

(1) सुबोध के उत्तर न देने पर शोभा ने छलकती हुई आँखों से क्या कहा ?

(2) वृन्दा किस पर झुंझलायी और क्यों ?

(3) चारपाई पर लेटे-लेटे सुबोध को क्या-क्या सुनाई दे रहा था ?

(4) तांगावाले को पैसे देने के बाद सुबोध कहाँ चला गया ?

(5) साइकिल सवार से टकराने पर सुबोध को कहाँ चोट आई ?

(6) सुबोध ने गुस्से में आकर माँ को क्या-क्या कहा ?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के आठ-दस पंक्तियों में उत्तर लिखिए :

(1) वृन्दा के स्वभाव में परिवर्तन क्यों आ गया ?

(2) नौकरी छोड़ देने के बाद सुबोध को किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा ?

(3) 'जिंदगी और गुलाब के फूल' शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।

(4) माँ और बेटे की गोपन व्यथा के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

4. संदर्भ सहित आशय स्पष्ट कीजिए :

(1) कोई अध्यापिका होने से ही पुस्तकों का प्रेमी नहीं हो जाता।

(2) प्यार से बड़ी एक और आग होती है, भूख की।

5. निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य-प्रयोग कीजिए :

आँखें मिलना, खटर-पटर करना।

6. निम्नलिखित शब्दों के समानार्थी शब्द लिखिए :

बाग, फूल, पवन, वृक्ष।

7. निम्नलिखित शब्दों के विलोम शब्द लिखिए :

मूक, सावधानी, पराजय, आशा, निश्चित।

8. निम्नलिखित शब्दों के विशेषण बनाइए :

स्वास्थ्य, सुंदरता, प्रफुल्लता, कठोरता।

9. निम्नलिखित शब्दों के संधि-विच्छेद कीजिए :

निरर्थक, निर्जन।

10. निम्नलिखित शब्दों का विग्रह करके समास-भेद लिखिए :

तिपाई, चारपाई, नवरत्न, पंचवटी।

11. सही विकल्प चुनकर रिक्त-स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(1) यद्यपि उसका पुरुष-हृदय वृन्दा की .... स्वीकार न कर पाता था।

(A) सत्ता (B) हैसियत (C) प्रतिष्ठा (D) स्थिति

(2) वाह रे .... ! उसने अपने आप से कहा।

(A) स्वाभिमानी (B) आत्मविश्वासी (C) अभिमानी (D) विरोधाभासी

(3) अपनी छटपटाहट में उसके अंदर एक तीव्र .... प्रवृत्ति जाग उठी थी।

(A) विभेदक (B) विध्वंसक (C) आक्रामक (D) प्रभावक

(4) आरंभ में कभी-कभी .... अपने बाग के गुलाब के फूल गुलदान में लगा जाती थी।

(A) वृन्दा (B) शोभा (C) निर्मला (D) निधि

विद्यार्थी-प्रवृत्ति

- किसी व्यक्ति की नौकरी छूट जाने पर उसके प्रति लोगों के व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों पर चर्चा कीजिए।
- अपने शब्दों में कहानी को संक्षेप में सुनाइए।

शिक्षक-प्रवृत्ति

- आत्मसम्मान और अभिमान का अंतर स्पष्ट करें।
- उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी के बारे में विद्यार्थियों को बताएँ।

●

3 कृष्णभक्ति के पद

1. सूरदास

(जन्म : सन् 1478 ई.; निधन : 1583 ई.)

(अनुमानित)

हिन्दी साहित्य में कृष्णभक्ति की अजस्र धारा को प्रवाहित करनेवाले अद्वितीय कवि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट 'सीही' नामक गाँव में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था । कुछ लोगों के मतानुसार इनका जन्मस्थान मथुरा के निकट 'रुनकता' क्षेत्र बताया जाता है। सूरदास का जन्मांध होना विवाद का विषय है। इनके काव्य में वर्ण्य-विषयों को देखते हुए इस बात पर विश्वास नहीं होता कि वे जन्मांध थे। इन्होंने अपनी कविता में बालकों की स्वाभाविक चेष्टाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का जैसा सजीव और यथार्थ चित्रण किया है, वह बिना देखे सम्भव नहीं है। कहा जाता है कि मथुरा के गऊघाट पर पुष्टिमार्गीय महाप्रभु वल्लभाचार्यजी से प्रेरणा-प्रकाश प्राप्तकर श्रीनाथजी के मंदिर में वे कृष्णलीला संबंधी पद बनाकर गाने लगे। गायन विद्या में निपुण होने के कारण इनकी ख्याति चारों ओर फैल गई।

सूरदास के काव्य का मुख्य विषय कृष्णभक्ति है। सूरदास बाल-मानस के बड़े पारखी थे। वात्सल्य और शृंगार रस के चित्रण में सूर अद्वितीय हैं। इनका बाल-लीला चित्रण-हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व-साहित्य में बेजोड़ माना जाता है। कृष्ण के मनोहारी रूपों का वर्णन करने में सूर की कला निखर उठी है। इनका 'भ्रमरगीत' भ्रमरगीत-परम्परा का सर्वोत्तम उपालम्भ काव्य है। इसमें गोपियों की विरह-वेदना आँसुओं के रूप में उमड़ पड़ी है। ब्रजभाषा की माधुरी उनके पदों में संगीत के नाद-सौंदर्य के साथ सहज ही बह निकलती है। 'सूर सारावली', 'साहित्य लहरी' और 'सूर सागर' में से 'सूर सागर' इनका सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है और यही इनकी अमर कीर्ति का आधार है।

यहाँ संकलित एकमात्र पद में कवि ईश्वर को समदर्शी स्वरूप की याद दिलाने के लिए विभिन्न दृष्टांत देते हुए उससे कृपा करने का निवेदन कर रहे हैं।

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, सुरसरि नाम परौ।
तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥२॥

शब्दार्थ-टिप्पण

औगुन दोष, अवगुण **सोई** वही **नार** नाला **पार करो** पार लगाएगा **समदरसी** समदर्शी सबको एक-सा समझने या देखने वाला **बधिक** कसाई **मैलो** गंदा **एक बरन** एक वर्ण **ज्यौ** जीव **निरधार** पृथक **कै** या तो, **इक** एक **पारस** एक कल्पित पत्थर जिसके संबंध में यह प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छूजाय तो सोना हो जाता है **सुरसरि** देवनदी, गंगा नदी।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए :

(1) 'हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ' किसकी पंक्ति है ?

(2) सूरदासजी प्रभु से क्या विनती करते हैं ?

(3) समदर्शी किसे कहा गया है ?

(4) लोहा खरा सोना कब बन जाता है ?

(5) पारस किनमें भेद नहीं करता ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए :

(1) प्रभु को समदर्शी क्यों कहा गया है ?

(2) 'इक नदिया इक नार कहावत' के माध्यम से सूरदासजी क्या कहना चाहते हैं ?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-सात वाक्यों में लिखिए :

सूर के इस पद का भाव अपने शब्दों में लिखिए।

4. आशय स्पष्ट कीजिए :

(1) जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, सुरसरि नाम परौ।

(2) तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।

5. सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) सूरदास के मतानुसार शरीर माया है और जीव .... है।

(A) ब्रह्म (B) सत् (C) चित् (D) आनंद

(2) सो दुबिधा पारस नहिं जानत, ... करत खरौ।

(A) सोना (B) कंचन (C) कनक (D) कुंदन

(3) जब मिलि गए तब एक .... ह्वै, सुरसरि नाम परौ।

(A) वरन् (B) वर्ण (C) बरन (D) वरण

6. पर्यायवाची शब्द लिखिए :

तन, नदी, सोना, पानी, पूजा, ईश्वर।

7. विलोम शब्द लिखिए :

दुविधा, अवगुण, गंदा, घर।

8. तत्सम रूप लिखिए :

औगुन, समदरसी, प्रन, ज्यौ, इक।

2. मीराबाई

(जन्म : सन् 1498 ई.; निधन : 1563 ई.)

(अनुमानित)

श्रीकृष्ण की अनुरागिनी अनन्य भक्त कवयित्री मीराबाई का जन्म राव रत्नसिंह के यहाँ कुड़की नामक गाँव में हुआ था। बचपन में ही माता का निधन हो जाने के कारण ये अपने पितामह राव दूदाजी के साथ मेड़ता रहती थीं और प्रारम्भिक शिक्षा भी वहीं प्राप्त की। राव दूदाजी के धार्मिक एवं उदार विचारों का मीराबाई पर पूरा प्रभाव था। मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के महाराजा राणा साँगा के जयेष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के कुछ वर्ष बाद ही दुर्भाग्यवश मीराबाई विधवा हो गयीं। वैधव्य के बाद इनका सारा समय श्रीकृष्णभक्ति में ही बीतने लगा। मीरा श्रीकृष्ण को अपना प्रियतम मानकर उनके विरह में पद गातीं और साधु-संतों के साथ कीर्तन एवं नृत्य करती थीं।

स्वजनों के दुर्व्यवहार से दु:खी होकर वे मेवाड़ छोड़कर मथुरा और वृन्दावन जाकर अपने प्रियतम एवं आराध्य श्रीकृष्ण के गुणों का गान करने लगीं। मीरा के पदों में सरलता, सरसता, सहजता का अद्‌भुत समन्वय है। मीरा की रचनाओं में इनके हृदय की विह्वलता स्पष्ट झलकती है। मीरा की भक्ति मूलत: माधुर्य भक्ति है, जिसमें दैन्य और दास भाव की छाया मिलती है। श्रीकृष्ण-प्रेम की दीवानी इस संत-कवयित्री ने विरह वेदना के जो गीत गाए हैं, वे हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि हैं। इनके पदों में ब्रजभाषा के साथ राजस्थानी और गुजराती भाषा का सुखद मिश्रण है। गुजराती भाषा में भी मीरा के पद प्राप्त होते हैं। कहा जाता है कि द्वारिका के रणछोड़जी के मंदिर में वे मृत्युपर्यन्त भजन-कीर्तन करती रहीं।

या ब्रज में कछू देख्यो री टोना।
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नंदजी के छोना।
दधि को नाम बिसरि गयौ प्यारी, लेलहुँ री कोई स्याम सलोना।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मोहना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुघर सलोना ॥
कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटकिया डोले।
दधि को नाम बिसर गई ग्वालन 'हरि ल्यो, हरि ल्यो' बोले।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई विण मोलै।
कृष्ण रूपी छकी है ग्वालिन, औरहि, और बोले ॥

शब्दार्थ-टिप्पण

टोना जादू **गुजरिया** ग्वालिन, गूजर जाति की स्त्री **छोना** लड़का, बच्चा **दधि** दही, **सलोना** सुन्दर, लावण्य **सुघर** सुघड़, गठा हुआ **ल्यौ री (लेलहुँ)** ले लो **डोले** घूम रही है **बिसरना** भूलना **चेरी** दासी **विण मोल** बिना कीमत दिए **छकी** तृप्त होकर **कुंज** वृक्षों या लताओं के झुरमुट से मंडप के समान आच्छादित स्थान।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) ग्वालिन सिर पर क्या रखकर निकली है ?

(2) ग्वालिन क्या बेचने निकली है ?

(3) ग्वालिन को मोहन कहाँ मिले ?

(4) ग्वालिन क्या भूल गई ?

(5) बाद में ग्वालिन दही के बदले किसका नाम लेकर बेचने लगी ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के दो-तीन वाक्यों में उत्तर लिखिए :

(1) 'हरि ल्यौ हरि ल्यौ' का क्या तात्पर्य है ?

(2) ग्वालिन के अंड-बंड बोलने का क्या कारण है ?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के पाँच-सात वाक्यों में उत्तर लिखिए :

(1) ग्वालिन की दशा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

4. आशय स्पष्ट कीजिए :

(1) वृंदावन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मोहना।

(2) दधि को नाम बिसर गई ग्वालन हरि ल्यौ, हरि ल्यौ बोले।

(3) चेरी भई विण मोलै।

5. सही विकल्प चुनकर पंक्ति पूर्ण कीजिए :

(1) या ब्रज में कछू देख्यो री ....।

(A) मोना (B) छोना (C) टोना

(2) .... को नाम बिसरि गयौ प्यारी, लेलहु री को स्याम सलोना।

(A) दधि (B) मधु (C) खीर

(3) मीरा के प्रभु गिरधर नागर .... भई विण मोलै।

(A) केरी (B) चेरी (C) वैरी

(4) कृष्ण रूपी छकी है .... औरहि और बोलै।

(A) मालिन (B) गामिन (C) ग्वालिन

6. पर्यायवाची शब्द लिखिए :

सुंदर, वृक्ष, आँख, सिर, गिरधर।

7. विलोम शब्द लिखिए :

स्मरण, एक, पेट, आगे।

8. वर्तनी सुधारकर लिखिए :

गूजरिया, गीरधर, मटकीया, ग्वालीन।

विद्यार्थी-प्रवृत्ति

- मीराबाई के पद को कंठस्थ करके वर्ग में सस्वर सुनाएँ।

शिक्षक-प्रवृत्ति

- सूरदास तथा मीराबाई के कुछ अन्य पदों का संकलन करवाएँ।

●

4 तुम कब जाओगे, अतिथि

शरद जोशी

(जन्म : सन् 1931 ई.; निधन : 1991 ई.)

इनका जन्म मध्य प्रदेश के उज्जैन नगर में हुआ। वे कुछ समय तक सरकारी नौकरी में रहे। बाद में स्वतंत्र लेखन करने लगे। हिंदी व्यंग्य-लेखन में हरिशंकर परसाई के बाद सबसे ज़्यादा प्रतिष्ठा इन्हें प्राप्त हुई। इनकी कहानियों पर आधारित 'लापतागंज' नाम का धारावाहिक भी बनाया गया है। 1990 में पद्मश्री सम्मान प्राप्त हुआ। मध्य प्रदेश सरकार ने इनके नाम पर शरद जोशी सम्मान भी आरंभ किया है।

'परिक्रमा', 'जीप पर सवार इल्लियाँ', 'तिलिस्म' आदि इनके प्रमुख व्यंग्य-संग्रह हैं, तो 'अंधों का हाथी' और 'एक था गधा' इनके लोकप्रिय व्यंग्य-नाटक हैं।

'तुम कब जाओगे, अतिथि' में ऐसे अतिथियों का ब्यौरा है, जिनके बारे में शरद जोशी ने स्वयं कहा है, 'अतिथि सदैव देवता नहीं होता, वह मानव और थोड़े अंशों में राक्षस भी हो सकता है।' प्रकट है कि यह उन अतिथियों की कहानी है, जो पहले से बिना कोई सूचना दिये मेज़बान के यहाँ आ धमकते हैं और फिर जल्दी जाने का नाम नहीं लेते । ऐसे मेहमानों की मेज़बानी डिनर से शुरू होती है और खिचड़ी पर जा पहुँचती है। मेज़बान के दिल से हमेशा एक ही पुकार उठती रहती है, 'उफ़, तुम कब जाओगे, अतिथि ?'

आज तुम्हारे आगमन के चतुर्थ दिवस पर यह प्रश्न बार-बार मन में घुमड़ रहा है - तुम कब जाओगे, अतिथि ?

तुम जहाँ बैठे निस्संकोच सिगरेट का धुआँ फेंक रहे हो, उसके ठीक सामने एक केलेंडर है। देख रहे हो ना ! उसकी तारीखें अपनी सीमा में नम्रता से फड़फड़ाती रहती हैं। विगत दो दिनों से मैं तुम्हें दिखाकर तारीखें बदल रहा हूँ। तुम जानते हो, अगर तुम्हें हिसाब लगाना आता है कि यह चौथा दिन है, तुम्हारे सतत आतिथ्य का चौथा भारी दिन ! पर तुम्हारे जाने की कोई संभावना प्रतीत नहीं होती। लाखों मील लंबी यात्रा करने के बाद वे दोनों एस्ट्रॉनाट्स भी इतने समय चाँद पर नहीं रुके थे, जितने समय तुम एक छोटी-सी यात्रा कर मेरे घर आए हो। तुम अपने भारी चरण-कमलों की छाप मेरी ज़मीन पर अंकित कर चुके, तुमने एक अंतरंग निजी संबंध मुझसे स्थापित कर लिया, तुमने मेरी आर्थिक सीमाओं की बैंजनी चट्टान देख ली; तुम मेरी काफ़ी मिट्टी खोद चुके। अब तुम लौट जाओ, अतिथि ! तुम्हारे जाने के लिए यह उच्च समय अर्थात् हाईटाइम है। क्या तुम्हें तुम्हारी पृथ्वी नहीं पुकारती ?

उस दिन जब तुम आए थे, मेरा हृदय किसी अज्ञात आशंका से धड़क उठा था। अंदर-ही-अंदर कहीं मेरा बटुआ काँप गया। उसके बावजूद एक स्नेह-भीगी मुसकराहट के साथ मैं तुमसे गले मिला था और मेरी पत्नी ने तुम्हें सादर नमस्ते की थी। तुम्हारे सम्मान में ओ अतिथि, हमने रात के भोजन को एकाएक उच्च-मध्यम वर्ग के डिनर में बदल दिया था। तुम्हें स्मरण होगा कि दो सब्ज़ियों और रायते के अलावा हमने मीठा भी बनाया था। इस सारे उत्साह और लगन के मूल में एक आशा थी। आशा थी कि दूसरे दिन किसी रेल से एक शानदार मेहमाननवाज़ी की छाप अपने हृदय में ले तुम चले जाओगे। हम तुमसे रुकने के लिए आग्रह करेंगे, मगर तुम नहीं मानोगे और एक अच्छे अतिथि की तरह चले जाओगे। पर ऐसा नहीं हुआ ! दूसरे दिन भी तुम अपनी अतिथि-सुलभ मुसकान लिए घर में ही बने रहे। हमने अपनी पीड़ा पी ली और प्रसन्न बने रहे। स्वागत-सत्कार के जिस उच्च बिंदु पर

हम तुम्हें ले जा चुके थे, वहाँ से नीचे उतर हमने फिर दोपहर के भोजन को लंच की गरिमा प्रदान की और रात्रि को तुम्हें सिनेमा दिखाया। हमारे सत्कार का यह आखिरी छोर है, जिससे आगे हम किसी के लिए नहीं बढ़े। इसके तुरंत बाद भावभीनी विदाई का वह भीगा हुआ क्षण आ जाना चाहिए था, जब तुम विदा होते और हम तुम्हें स्टेशन तक छोड़ने जाते। पर तुमने ऐसा नहीं किया ।

तीसरे दिन की सुबह तुमने मुझसे कहा, ''मैं धोबी को कपड़े देना चाहता हूँ।''

यह आघात अप्रत्याशित था और इसकी चोट मार्मिक थी। तुम्हारे सामीप्य की वेला एकाएक यों रबर की तरह खिंच जाएगी, इसका मुझे अनुमान न था। पहली बार मुझे लगा कि अतिथि सदैव देवता नहीं होता, वह मानव और थोड़े अंशों में राक्षस भी हो सकता है।

''किसी लॉण्ड्री पर दे देते हैं, जल्दी धुल जाएँगे।'' मैंने कहा। मन-ही-मन एक विश्वास पल रहा था कि तुम्हें जल्दी जाना है।

''कहाँ है लॉण्ड्री ?''

''चलो चलते हैं।'' मैंने कहा और अपनी सहज बनियान पर औपचारिक कुर्ता डालने लगा।

''कहाँ जा रहे हैं ?'' पत्नी ने पूछा।

''इनके कपड़े लॉण्ड्री पर देने हैं।'' मैंने कहा।

मेरी पत्नी की आँखें एकाएक बड़ी-बड़ी हो गई। आज से कुछ बरस पूर्व उनकी ऐसी आँखें देख मैंने अपने अकेलेपन की यात्रा समाप्त कर बिस्तर खोल दिया था। पर अब जब वे ही आँखें बड़ी होती हैं तो मन छोटा होने लगता है । वे इस आशंका और भय से बड़ी हुई थीं कि अतिथि अधिक दिनों ठहरेगा।

और आशंका निर्मूल नहीं थी, अतिथि ! तुम जा नहीं रहे। लॉण्ड्री पर दिए कपड़े धुलकर आ गए और तुम यहीं हो। तुम्हारे भरकम शरीर से सलवटें पड़ी चादर बदली जा चुकी और तुम यहीं हो। तुम्हें देखकर फूट पड़नेवाली मुसकराहट धीरे-धीरे फीकी पड़कर अब लुप्त हो गई है। ठहाकों के रंगीन गुब्बारे, जो कल तक इस कमरे आकाश में उड़ते थे, अब दिखाई नहीं पड़ते। बातचीत की उछलती हुई गेंद चर्चा के क्षेत्र के सभी कोनलों से टप्पे खाकर फिर सेंटर में आकर चुप पड़ी है। अब इसे न तुम हिला रहे हो, न मैं। कल से मैं उपन्यास पढ़ रहा हूँ और तुम फिल्मी पत्रिका के पन्ने पलट रहे हो। शब्दों का लेन-देन मिट गया और चर्चा के विषय चुक गए। परिवार, बच्चे, नौकरी, फिल्म, राजनीति, रिश्तेदारी, तबादले, पुराने दोस्त, परिवार-नियोजन, मँहगाई, साहित्य और यहाँ तक कि आँख मार-मारकर हमने पुरानी प्रेमिकाओं का भी ज़िक्र कर लिया और अब एक चुप्पी है। सौहार्द अब शनैः-शनैः बोरियत में रूपांतरित हो रहा है। भावनाएँ गालियों का स्वरूप ग्रहण कर रही हैं, पर तुम जा नहीं रहे। किस अदृश्य गोंद से तुम्हारा व्यक्तित्व यहाँ चिपक गया है, मैं इस भेद को सपरिवार नहीं समझ पा रहा हूँ। बार-बार यह प्रश्न उठ रहा है - तुम कब जाओगे, अतिथि ?

कल पत्नी ने धीरे से पूछा था, ''कब तक टिकेंगे ये ?''

मैंने कंधे उचका दिए, ''क्या कह सकता हूँ !''

''मैं तो आज खिचड़ी बना रही हूँ। हलकी रहेगी।''

''बनाओ।''

सत्कार की ऊष्मा समाप्त हो रही थी। डिनर से चले थे, खिचड़ी पर आ गए। अब भी अगर तुम अपने बिस्तर को गोलाकार रूप नहीं प्रदान करते तो हमें उपवास तक जाना होगा। तुम्हारे-मेरे संबंध एक संक्रमण के दौर से गुज़र रहे हैं। तुम्हारे जाने का यह चरम क्षण है। तुम जाओ न अतिथि !

तुम्हें यहाँ अच्छा लग रहा है न ! मैं जानता हूँ। दूसरों के यहाँ अच्छा लगता है। अगर बस चलता तो सभी लोग दूसरों के यहाँ रहते, पर ऐसा नहीं हो सकता। अपने घर की महत्ता के गीत इसी कारण गाए गए हैं। होम को इसी कारण स्वीट-होम कहा गया है कि लोग दूसरे के होम की स्वीटनेस को काटने न दौड़ें। तुम्हें यहाँ अच्छा लग रहा है, पर सोचो प्रिय, कि शराफ़त भी कोई चीज़ होती है और गेट आउट भी एक वाक्य है, जो बोला जा सकता है।

अपने खर्राटों से एक और रात गुंजायमान करने के बाद कल जो किरण तुम्हारे बिस्तर पर आएगी वह तुम्हारे यहाँ आगमन के बाद पाँचवें सूर्य की परिचित किरण होगी। आशा है, वह तुम्हें चूमेगी और तुम घर लौटने का सम्मानपूर्ण निर्णय ले लोगे। मेरी सहनशीलता की वह अंतिम सुबह होगी। उसके बाद मैं स्टैंड नहीं कर सकूँगा और लड़खड़ा जाऊँगा। मेरे अतिथि, मैं जानता हूँ कि अतिथि देवता होता है, पर आखिर मैं भी मनुष्य हूँ। मैं कोई तुम्हारी तरह देवता नहीं। एक देवता और एक मनुष्य अधिक देर साथ नहीं रहते। देवता दर्शन देकर लौट जाता है। तुम लौट जाओ अतिथि ! इसी में तुम्हारा देवत्व सुरक्षित रहेगा। यह मनुष्य अपनीवाली पर उतरे, उसके पूर्व तुम लौट जाओ !

उफ़, तुम कब जाओगे, अतिथि ?

शब्दार्थ-टिप्पण

अतिथि मेहमान **आघात** चोट, पीड़ा, कष्ट **डिनर** रात का भोजन **सदैव** हमेशा **सुलभ** सहजता से प्राप्त, उपलब्ध **लंच** दोपहर का भोजन **भरकम** भारी, वजनदार **शनैः-शनैः** धीरे-धीरे **उपवास** व्रत **आगमन** आना **निस्संकोच** संकोचरहित, बिना संकोच के **नम्रता** नत होने का भाव, स्वभाव में नरमी होना **एकाएक** अचानक **विगत** बीते हुए, पिछले

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए :

(1) अतिथि कितने दिनों से लेखक के घर पर रह रहा है ?

(2) पति-पत्नी ने मेहमान का स्वागत कैसे किया ?

(3) दोपहर के भोजन को कौन-सी गरिमा प्रदान की गई ?

(4) तीसरे दिन अतिथि ने सुबह क्या कहा ?

(5) सत्कार की ऊष्मा समाप्त होने पर क्या हुआ ?

(6) अतिथि को देवता क्यों कहा जाता है ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए :

(1) लेखक को अतिथि का चौथा दिन भारी क्यों लगने लगा ?

(2) लेखक अतिथि से क्यों कहता है कि यह तुम्हारे जाने का उच्च समय है ?

(3) लेखक अतिथि से लौट जाने के लिए क्यों कहता है ?

(4) लेखक ने स्वीट होम एवं गेट आउट शब्द का उल्लेख क्यों किया है ?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तारपूर्वक लिखिए :

(1) प्रारंभ में लेखक ने अतिथि का सत्कार कैसे किया ?

(2) कौन-सा आघात अप्रत्याशित था और उसका लेखक पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(3) लेखक अतिथि को कैसी विदाई देना चाहता था ?

(4) जब अतिथि चार दिन तक नहीं गया तो लेखक के व्यवहार में क्या-क्या परिवर्तन आए ?

4. निम्नलिखित पंक्तियों के आशय स्पष्ट कीजिए :

(1) अंदर ही अंदर मेरा बटुआ काँप गया।

(2) अतिथि सदैव देवता नहीं होता, वह मानव और थोड़े अंशों में राक्षस भी हो सकता है।

(3) मेरी सहनशीलता की वह अंतिम सुबह होगी।

(4) एक देवता और एक मनुष्य अधिक देर साथ नहीं रहते।

5. निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखिए :

चांद, पृथ्वी, जिक्र, आघात।

6. संधि-विच्छेद करके लिखिए :

सदैव, निर्मूल, नमस्ते।

7. विरोधी शब्द लिखिए :

सीमित, अप्रत्याशित, अज्ञात, मेहमान।

8. शब्द समूह के लिए एक शब्द लिखिए :

(1) जिसके आगमन की कोई तिथि न हो।

(2) रात को किया जाने वाला भोजन।

विद्यार्थी-प्रवृत्ति

- विद्यार्थी अपने घर आए अतिथियों के सत्कार का अनुभव कक्षा में सुनाएँ।
- ''आधुनिक युग में अतिथि बोझरूप क्यों हो जाते हैं'' इस विषय पर विद्यार्थी कक्षा में अपनी प्रतिक्रिया दें।

शिक्षक-प्रवृत्ति

- शिक्षक कक्षा में ''अतिथि देवो भव'' की भावना स्पष्ट करें।
- शिक्षक कक्षा में विद्यार्थियों को अतिथि सत्कार के बारे में समझाएँ।

●

5	वाटिका-प्रसंग

तुलसीदास

(जन्म : सन् 1532 ई.; निधन : 1623 ई.)

हिन्दी साहित्य की सगुण काव्यधारा की राम-भक्ति शाखा के प्रमुख कवि लोकनायक तुलसीदासजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के राजापुर गाँव में हुआ था। कहा जाता है कि इनके माता-पिता ने इन्हें बचपन में ही त्याग दिया था, इसलिए इनकी बाल्यावस्था अत्यन्त अभावों में व्यतीत हुई। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। इनकी पत्नी का नाम रत्नावली था। अपनी पत्नी रत्नावली के प्रति मोहांध तुलसी उसी के द्वारा धिक्कारे जाने पर संसार से विमुख हो राम-भक्ति में लीन हो गये। वर्षों तक काशी, अयोध्या और चित्रकूट में रहकर साधना की। बाबा नरहरिदास ने ही इन्हें राम नाम की दीक्षा दी थी। अवधी भाषा में रचित 'रामचरितमानस' उनका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

तुलसी का व्यक्तित्व समन्वयवादी था और दृष्टिकोण मर्यादावादी। ये मानव मूल्यों के उपासक थे। इनके राम मानवीय आदर्शों के प्रतीक हैं, तो रावण मूल्यहीनता का प्रतिनिधि है। लोकमंगल के उदात्त आदर्श से अनुप्राणित उनकी कविता रावणत्व पर रामत्व के विजय की कविता है। इनके काव्य को पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि ये संस्कृत भाषा के भी पंडित थे, किन्तु इन्होंने जानबूझकर अवधी और ब्रजभाषा को अपने काव्य के लिए चुना। अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही तुलसी ने काव्य रचना की है। 'रामचरितमानस' जैसे श्रेष्ठ महाकाव्य के अलावा 'गीतावली', 'कवितावली', 'दोहावली', 'कृष्ण गीतावली', 'विनय पत्रिका' आदि इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं।

यह अंश 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड से लिया गया है। यह प्रसंग उस समय का है जब राम और लक्ष्मण अपने गुरु के साथ सीताजी के स्वयंवर में जनकपुर आए थे। स्वयंवर के पहले दोनों भाई वाटिका में भ्रमण हेतु आते हैं और उसी समय सीताजी भी अपनी सखियों के साथ वहाँ आई हुई हैं। यहाँ राम और सीता का एक-दूसरे से सामना होता है। उसी का यह सुन्दर वर्णन तुलसीदास ने यहाँ किया है।

देखन बागु कुँअर दुइ आए । बय किसोर सब भूमि सुहाए ॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥
सुनि हरषीं सब सखीं सयानी । सिय हियँ अति उतकंठा जानी ॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली । सुने जे मुनि सँग आपाकाली ॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी । कीन्हे स्वबस नगर नर नारी ॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू ॥
तासु बचन अति सियहि सोहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥
दो० - सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ॥
मानहुँ वदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्ही ॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबि गृह दीपसिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी ॥

दो० - सिय सोभा हियैं बरनि प्रभु, आपनि दसा विचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि ॥

शब्दार्थ-टिप्पण

बागु बाग, वाटिका, उपवन **दुई** दो **बय** वय, उम्र **छवि** शोभा **बखानी** वर्णन, प्रशंसा **गिरा** वाणी **सयानी** चतुर, चालाक **उतकंठा** जिज्ञासा **नृपसुत** राजपुत्र **बरनत** वर्णन **अवसि** अवश्य **लोचन** नेत्र **प्रीति** प्रेम **पुरातन** प्राचीन **पुनीत** पवित्र **मृगी** हिरनी **सभीत** भयभीत **चितए** देखा **ओरा** तरफ **ससि** चन्द्र **अचंचल** स्थिर **सराहना** प्रशंसा करना **बिरंचि** ब्रह्माजी **निपुनाई** चतुराई, निपुणता **दीप-शिखा** दीपक की ज्योत **पटितरौ** तुलना **जुठारी** जूठा, पहले प्रयोग किया हुआ।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए :

(1) वाटिका देखने के लिए कौन-कौन आए थे ?
(2) श्री राम का मुख कैसा था ?
(3) सीताजी के हृदय में उत्कंठा कब उत्पन्न हुई ?
(4) ब्रह्माजी ने अपनी निपुणता किस प्रकार प्रकट की है ?
(5) श्री राम ने कौन-कौन से आभूषण धारण किए हैं ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए :

(1) श्री राम को देखकर सीताजी पर क्या प्रभाव पड़ा ?
(2) सीताजी के नेत्र क्यों व्याकुल होने लगे ?
(3) सीताजी सभी दिशाओं में किस प्रकार देख रही थीं ?
(4) सीताजी ने किसके वचनों का स्मरण किया ? उसका सीताजी के मन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तारपूर्वक लिखिए :

(1) रामचंद्रजी की छवि का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

(2) 'वाटिका-प्रसंग' का भाव अपने शब्दों में लिखिए।

4. समानार्थी शब्द लिखिए :

बाग, वय, नृप, मदन, विश्व।

5. खड़ीबोली रूप दीजिए :

दुइ, बिनु, लखनु, बचनु, रामु, सुचि।

6. विलोम शब्द लिखिए :

प्रिय, सुंदर, अग्र, निशा, शुचि।

विद्यार्थी-प्रवृत्ति

- यहाँ संकलित चौपाई-दोहों का गान कीजिए।
- तुलसीदास की अन्य रचनाओं के बारे में जानकारी एकत्र कीजिए।

शिक्षक-प्रवृत्ति

- विद्यार्थियों को कवित्त, दोहा तथा चौपाई गान की पद्धति समझाइए।

●

6 उत्साह

रामचन्द्र शुक्ल

(जन्म : सन् 1884 ई.; निधन : 1941 ई.)

हिंदी के महान आलोचकों में से एक। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के ज़िला बस्ती में हुआ। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' इनकी सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण पुस्तक है। 'चिंतामणि' में भावों से संबंधित विश्लेषणात्मक निबंध इनके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। 'कविता क्या है ?' नाम का निबंध भी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। 'रस मीमांसा' में इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की रीढ़ 'रस' की जो पुनर्व्याख्या की है, उसे भी नहीं भुलाया जा सकता।

'उत्साह' उनका मनोविश्लेषणात्मक श्रेणी का निबंध है, जिसमें उन्होंने भावों या मनोविकारों का अध्ययन किया है । सभी जानते हैं कि 'वीर रस' का स्थायी भाव 'उत्साह' है। यहाँ रामचंद्र शुक्ल ने बनी-बनायी लीक का अनुसरण नहीं किया है। उन्होंने व्यंग्य और आत्मीयता से भरी अपनी शैली के द्वारा 'वस्तुनिष्ठ निबंध' को भी 'ललित निबंध' की ऊँचाई तक पहुँचा दिया है। रामचंद्र शुक्ल एक तरफ़ स्वीकार करते हैं कि 'उत्साह की गिनती अच्छे गुणों में होती है ।' तो दूसरी तरफ़ ये भी कहते हैं, 'तुच्छ मनोवृत्तियों द्वारा प्रेरित साहसी और दयावान भी मिलते हैं।' इससे उनके व्यंग्य की क्षमता का पता चलता है।

दु:ख के वर्ग में जो स्थान भय का है, वही स्थान आनन्द-वर्ग में उत्साह का है। भय में हम प्रस्तुत कठिन स्थिति के नियम से विशेष रूप में दु:खी और कभी-कभी उस स्थिति से अपने को दूर रखने के लिए प्रयत्नवान् भी होते हैं । उत्साह में हम आनेवाली कठिन स्थिति के भीतर साहस के अवसर के निश्चय द्वारा प्रस्तुत कर्म-सुख की उमंग से अवश्य प्रयत्नवान् होते हैं। उत्साह में कष्ट या हानि सहने की दृढ़ता के साथ-साथ कर्म में प्रवृत्ति होने के आनन्द का योग रहता है। साहस-पूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है। कर्म-सौन्दर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं ।

जिन कर्मों में किसी प्रकार का कष्ट या हानि सहने का साहस अपेक्षित होता है उन सबके प्रति उत्कण्ठापूर्ण आनन्द उत्साह के अन्तर्गत लिया जाता है। कष्ट या हानि के भेद के अनुसार उत्साह के भी भेद हो जाते हैं। साहित्य-मीमांसकों ने इसी दृष्टि से युद्ध-वीर, दान-वीर, दया-वीर इत्यादि भेद किये हैं। इनमें सबसे प्राचीन और प्रधान युद्ध वीरता है, जिसमें आघात, पीड़ा या मृत्यु की परवा नहीं रहती । इस प्रकार की वीरता का प्रयोजन अत्यन्त प्राचीन काल से पड़ता चला आ रहा है, जिसमें साहस और प्रयत्न दोनों चरम उत्कर्ष पर पहुँचते हैं। पर केवल कष्ट या पीड़ा सहन करने के साहस में ही उत्साह का स्वरूप स्फुरित नहीं होता। उसके साथ आनन्द-पूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कण्ठा का योग चाहिए। बिना बेहोश हुए भारी फोड़ा चिराने को तैयार होना साहस कहा जायगा, पर उत्साह नहीं। इसी प्रकार चुपचाप, बिना हाथ-पैर हिलाये, घोर प्रहार सहने के लिए तैयार रहना साहस और कठिन से कठिन प्रहार सहकर भी जगह से न हटना धीरता कही जायगी । ऐसे साहस और धीरता को उत्साह के अन्तर्गत तभी ले सकते हैं जब कि साहसी या धीर उस काम को आनन्द के साथ करता चला जायगा जिसके कारण उसे इतने प्रहार सहने पड़ते हैं। सारांश यह कि आनन्दपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कण्ठा में ही उत्साह का दर्शन होता है, केवल कष्ट सहने में निश्चेष्ट साहस में नहीं। धृति और साहस दोनों का उत्साह के बीच संचरण होता है।

दान-वीर में अर्थ-त्याग का साहस अर्थात् उसके कारण होनेवाले कष्ट या कठिनता को सहने की क्षमता अन्तर्हित रहती है। दानवीरता तभी कही जायगी जब दान के कारण दानी को अपने जीवन-निर्वाह में किसी प्रकार का कष्ट या कठिनता दिखाई देगी, इसी कष्ट या कठिनता की मात्रा या सम्भावना जितनी ही अधिक होगी, दानवीरता उतनी

ही ऊँची समझी जायगी। पर इस अर्थ-त्याग के साहस के साथ ही जब तक पूर्ण तत्परता और आनन्द के चिह्न न दिखाई पड़ेंगे तब तक उत्साह का स्वरूप न खड़ा होगा।

युद्ध के अतिरिक्त संसार में और भी ऐसे विकट काम होते हैं जिनमें घोर शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है और प्राण-हानि तक की संभावना रहती है। अनुसंधान के लिए तुषार-मण्डित अभ्रभेदी अगम्य पर्वतों की चढ़ाई, ध्रुव देश या सहारा के रेगिस्तान का सफर; क्रूर, बर्बर जातियों के बीच अज्ञात घोर जंगलों में प्रवेश इत्यादि भी पूरी वीरता और पराक्रम के कर्म हैं। इनमें जिस आनन्दपूर्ण तत्परता के साथ लोग प्रवृत्त हुए हैं वह भी उत्साह ही है।

मनुष्य शारीरिक कष्ट से ही पीछे हटनेवाला प्राणी नहीं है। मानसिक क्लेश की सम्भावना से भी बहुत से कर्मों की और प्रवृत्त होने का साहस उसे नहीं होता। जिन बातों से समाज के बीच उपहास, निन्दा, अपमान इत्यादि का भय रहता है उन्हें अच्छी और कल्याणकारिणी समझते हुए भी बहुत से लोग उनसे दूर रहते हैं। प्रत्यक्ष हानि देखते हुए भी कुछ प्रथाओं का अनुसरण बड़े-बड़े समझदार तक इसलिए करते चलते हैं कि उनके त्याग से वे बुरे कहे जायेंगे, लोगों में उनका वैसा आदर-सम्मान न रह जायगा। उसके लिए मानग्लानि का कष्ट सब शारीरिक क्लेशों से बढ़कर होता है । जो लोग मान-अपमान का कुछ भी ध्यान न करके निन्दा-स्तुति की कुछ भी परवा न करके किसी प्रचलित प्रथा के विरुद्ध पूर्ण तत्परता और प्रसन्नता के साथ कार्य करते जाते हैं वे एक ओर तो उत्साही और वीर कहलाते हैं दूसरी ओर भारी बेहया।

किसी शुभ परिणाम पर दृष्टि रखकर निन्दा-स्तुति, मान-अपमान आदि की कुछ परवा न करके प्रचलित प्रथाओं का उल्लंघन करनेवाले वीर या उत्साही कहलाते हैं, यह देखकर बहुत से लोग केवल इसके विरुद्ध लोभ में ही अपनी उछल-कूद दिखाया करते हैं। वे केवल उत्साही या साहसी कहे जाने के लिए ही चली आती हुई प्रथाओं को तोड़ने की धूम मचाया करते हैं। शुभ या अशुभ परिणाम से उनसे कोई मतलब नहीं, उनकी ओर उनका ध्यान लेशमात्र नहीं रहता। जिस पक्ष के बीच की सुख्याति का वे अधिक महत्व समझते हैं उसकी वाहवाही से उत्पन्न आनन्द की चाह में वे दूसरे पक्ष के बीच की निन्दा या अपमान की कुछ परवा नहीं करते। ऐसे ओछे लोगों के साहस या उत्साह की अपेक्षा उन लोगों के साहस—भाव की दृष्टि से—कहीं अधिक मूल्यवान हैं जो किसी प्राचीन प्रथा की—चाहे वास्तव में हानिकारिणी ही हो—उपयोगिता का सच्चा विश्वास रहते हुए प्रथा तोड़नेवालों की निन्दा, उपहास, अपमान आदि सहा करते हैं।

समाज-सुधार के वर्तमान आन्दोलनों के बीच जिस प्रकार सच्ची अनुभूति से प्रेरित उच्चाशय और गम्भीर पुरुष पाये जाते हैं उसी प्रकार तुच्छ मनोवृत्तियों द्वारा प्रेरित साहसी और दयावान भी बहुत मिलते हैं। मैंने कई छिछोरों और लम्पटों को विधवाओं की दशा पर दया दिखाते हुए उनके पापाचार के लम्बे-चौड़े दास्तान हर दम सुनते-सुनाते पाया है। ऐसे लोग वास्तव में काम-कथा के रूप में ऐसे वृत्तांतों का तन्मयता के साथ कथन और श्रवण करते हैं। इस ढाँचे के लोगों से सुधाार के कार्य में सहायता पहुँचाने के स्थान पर बाधा पहुँचाने की ही सम्भावना रहती है। 'सुधार' के नाम पर साहित्य के क्षेत्र में भी ऐसे लोग गन्दगी फैलाते पाये जाते हैं।

उत्साह की गिनती अच्छे गुणों में होती है। किसी भाव के अच्छे या बुरे होने का निश्चय अधिकतर उसकी प्रवृत्ति के शुभ या अशुभ परिणाम के विचार से होता है। वही उत्साह जो कर्तव्य कर्मों के प्रति इतना सुन्दर दिखाई पड़ता है, अकर्तव्य कर्मों की ओर होने पर वैसा श्लाघ्य नहीं प्रतीत होता। आत्मरक्षा, पर-रक्षा, देश-रक्षा आदि के निमित्त साहस की जो उमंग देखी जाती है उसके सौन्दर्य को पर-पीड़न, डकैती आदि कर्मों का साहस कभी नहीं पहुँच सकता। यह बात होते हुए भी विशुद्ध उत्साह या साहस की प्रशंसा संसार में थोड़ी-बहुत होती ही है। अत्याचारियों या डाकुओं के शौर्य और साहस की कथाएँ भी लोग तारीफ करते हुए सुनते हैं।

अब तक उत्साह का प्रधान रूप ही हमारे सामने रहा, जिसमें साहस का पूरा योग रहता है। पर कर्ममात्र के संपादन में जो तत्परतापूर्ण आनन्द देखा जाता है वह उत्साह ही कहा जाता है। सब कामों में साहस अपेक्षित नहीं होता, पर थोड़ा-बहुत आराम, विश्राम, सुभीते आदि का त्याग सबसे करना पड़ता है, और कुछ नहीं तो उठकर बैठना, खड़ा होना या दस-पाँच कदम चलना ही पड़ता है। जब तक आनन्द का लगाव किसी क्रिया, व्यापार या

उसकी भावना के साथ नहीं दिखाई पड़ता तब तक उसे 'उत्साह' की संज्ञा प्राप्त नहीं होती। यदि किसी प्रिय मित्र के आने का समाचार पाकर हम चुपचाप ज्यों के त्यों आनन्दित होकर बैठे रह जायें या थोड़ा हँस भी दें तो यह हमारा उत्साह नहीं कहा जायगा । हमारा उत्साह तभी कहा जायगा जब हम अपने मित्र का आगमन सुनते ही उठ खड़े होंगे। उससे मिलने के लिए दौड़ पड़ेंगे और उसके ठहरने आदि के प्रबन्ध में प्रसन्न-मुख इधर-उधर आते-जाते दिखाई देंगे। प्रयत्न और कर्म संकल्प उत्साह नामक आनन्द के नित्य लक्षण हैं।

प्रत्येक कर्म में थोड़ा या बहुत बुद्धि का योग भी रहता है। कुछ कर्मों में तो बुद्धि की तत्परता और शरीर की तत्परता दोनों बराबर साथ-साथ चलती है। उत्साह की उमंग जिस प्रकार हाथ-पैर चलवाती है, उसी प्रकार बुद्धि भी काम कराती है। ऐसे उत्साहवाले वीर को कर्मवीर कहना चाहिए या बुद्धिवीर—यह प्रश्न मुद्राराक्षस-नाटक बहुत अच्छी तरह हमारे सामने लाता है। चाणक्य और राक्षस के बीच जो चोटें चली हैं वे नीति की हैं—शस्त्र की नहीं। अत: विचार करने की बात यह है कि उत्साह की अभिव्यक्ति बुद्धि-व्यापार के अवसर पर होती है अथवा बुद्धि द्वारा निश्चित उद्योग में तत्पर होने की दशा में। हमारे देखने में तो उद्योग की तत्परता में ही उत्साह की अभिव्यक्ति होती है; अत: कर्मवीर ही कहना ठीक है।

बुद्धि-वीर दृष्टान्त कभी-कभी हमारे पुराने ढंग के शास्त्रार्थों में देखने को मिल जाते हैं। जिस समय किसी भारी शास्त्रार्थी पण्डित से भिड़ने के लिए कोई विद्यार्थी आनन्द के साथ सभा में आगे आता है, उस समय उसके बुद्धि-साहस की प्रशंसा अवश्य होती है। वह जीते या हारे बुद्धि-वीर समझा ही जाता है। इस जमाने में वीरता का प्रसंग उठाकर वाग्वीर का उल्लेख आदि न हो तो बात अधूरी ही समझी जायगी। ये वाग्वीर आजकल बड़ी-बड़ी सभाओं के मंचों पर से लेकर स्त्रियों के उठाये हुए पारिवारिक प्रपंचों तक में पाये जाते हैं और काफी तादाद में।

थोड़ा यह भी देखना चाहिए कि उत्साह में ध्यान किस पर रहता है। कर्म पर, उसके फल पर अथवा व्यक्ति या वस्तु पर ? हमारे विचार में उत्साही वीर का ध्यान आदि से अन्त तक पूरी कर्म शृङ्खला पर से होता हुआ उसकी सफलता रूपी समाप्ति तक फैला रहता है। इसी ध्यान से जो आनन्द की तरंगें उठती हैं वे ही सारे प्रयत्न को आनन्दमय कर देती हैं। युद्ध-वीर में विजेतव्य को आलम्बन कहा गया है उसका अभिप्राय यही है कि विजेतव्य कर्म प्रेरक के रूप में वीर के ध्यान में स्थित रहता है, वह कर्मस्वरूप का भी निर्धारण करता है। पर आनन्द और साहस के मिश्रित भाव का सीधा लगाव उसके साथ नहीं रहता। सच पूछिए तो वीर के उत्साह का विषय विजय-विधायक कर्म या युद्ध ही रहता है। दानवीर और धर्मवीर पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दान दयावश, श्रद्धावश या कीर्ति-लोभवश दिया जाता है। यदि श्रद्धा-वश दान दिया जा रहा है तो दान-पत्र वास्तव में श्रद्धा का और यदि दया-वंश दिया जा रहा है तो पीड़ित यथार्थ में दया का विषय या आलम्बन ठहरता है। अत: उस श्रद्धा या दया की प्रेरणा से जिस कठिन या दुस्साध्य कर्म की प्रवृत्ति होती है उसी की ओर उत्साही का साहसपूर्ण आनन्द उन्मुख कहा जा सकता है। अत: और रसों में आलम्बन का स्वरूप जैसा निर्दिष्ट रहता है वैसा वीररस में नहीं। बात यह है कि उत्साह एक यौगिक भाव है जिसमें साहस और आनन्द का मेल रहता है।

जिस व्यक्ति या वस्तु पर प्रभाव डालने के लिए वीरता दिखाई जाती है उसकी ओर उन्मुख कर्म होता है और कर्म की ओर उन्मुख उत्साह नामक भाव होता है। सारांश यह है कि किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ उत्साह का सीधा लगाव नहीं होता। समुद्र लाँघने के लिए जिस उत्साह के साथ हनुमान उठे हैं उसका कारण समुद्र नहीं—समुद्र लाँघने का विकट कर्म है। कर्म भावना ही उत्साह उत्पन्न करती है, वस्तु या व्यक्ति की भावना नहीं।

किसी कर्म के सम्बन्ध में जहाँ आनन्दपूर्ण तत्परता दिखाई पड़ी कि हम उसे उत्साह कह देते हैं। कर्म के अनुष्ठान में जो आनन्द होता है उसका विधान तीन रूपों में दिखाई पड़ता है—

१. कर्म-भावना से उत्पन्न,

२. फल-भावना से उत्पन्न और

३. आगन्तुक, अर्थात् विषयान्तर से प्राप्त।

इनमें कर्म-भावना-प्रसूत आनन्द को ही सच्चे वीरों का आनन्द समझना चाहिए, जिसमें साहस का योग प्राय:

बहुत अधिक रहा करता है। सच्चा वीर जिस समय मैदान में उतरता है उसी समय उसमें उतना आनन्द भरा रहता है जितना औरों को विजय या सफलता प्राप्त करने पर होता है। उसके सामने कर्म और फल के बीच या तो कोई अन्तर होता ही नहीं या बहुत सिमटा हुआ होता है। इसी से कर्म की ओर यह उसी झोंक से लपकता है जिस झोंक से साधारण लोग फल की ओर लपका करते हैं। इसी कर्मप्रवर्तक आनन्द की मात्रा के हिसाब से शौर्य और साहस का स्फुरण होता है ।

फल की भावना से उत्पन्न आनन्द भी साधक कर्मों की ओर हर्ष और तत्परता के साथ प्रवृत्त करता है। पर फल का लोभ जहाँ प्रधान रहता है वहाँ कर्म-विषयक आनन्द उसी फल की भावना की तीव्रता और मन्दता पर अवलम्बित रहता है। उद्योग के प्रभाव के बीच जब-जब फल की भावना मन्द पड़ती है—उसकी आशा कुछ धुँधली पड़ जाती है तब-तब आनन्द की उमंग गिर जाती है और उसी के साथ उद्योग में भी शिथिलता आ जाती है। पर कर्म-भावना-प्रधान बराबर एकरस रहता है। फलासक्त उत्साही असफल होने पर खिन्न और दुःखी होता है, पर कर्मासक्त उत्साही केवल कर्मानुष्ठान के पूर्व की अवस्था में हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि कर्म-भावना-प्रधान उत्साह ही सच्चा उत्साह है। फल-भावना-प्रधान उत्साह तो लोभ ही का एक प्रच्छन्न रूप है।

उत्साह वास्तव में कर्म और फल की मिली-जुली अनुभूति है जिसकी प्रेरणा से तत्परता आती है। यदि फल दूर ही पर दिखाई पड़े, उसकी भावना के साथ हो उसकी लेशमात्र भी कर्म या प्रयत्न के साथ लगाव न मालूम हो तो हमारे हाथ-पाँव कभी न उठें और उस फल के साथ हमारा संयोग ही न हो। इससे कर्म शृंखला की पहली कड़ी पकड़ते ही फल के आनन्द की भी कुछ अनुभूति होने लगती है। यदि हमें यह निश्चय हो जाय की अमुक स्थान पर जाने से हमें किसी प्रिय व्यक्ति का दर्शन होगा तो उस निश्चय के प्रभाव से हमारी यात्रा भी अत्यन्त प्रिय हो जायेगी। हम चल पड़ेंगे और हमारे अंगों की प्रत्येक गति में प्रफुल्लता दिखाई देगी। यही प्रफुल्लता कठिन से कठिन कर्मों के साधन में भी देखी जाती है। वे कर्म भी प्रिय हो जाते हैं और अच्छे लगने लगते हैं। जब तक फल तक पहुँचनेवाला कर्म-पथ अच्छा न लगेगा तब तक केवल फल का अच्छा लगना कुछ नहीं। फल की इच्छा मात्र हृदय में रखकर जो प्रयत्न किया जायेगा वह अभावमय और आनन्दशून्य होने के कारण निर्जीव-सा होगा।

कर्म-रुचि-शून्य प्रयत्न में कभी-कभी इतनी उतावली और आकुलता होती है कि मनुष्य साधना के उत्तरोत्तर क्रम का निर्वाह न कर सकने के कारण बीच ही में चूक जाता है। मान लीजिए कि एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर विचरते हुए किसी व्यक्ति को नीचे बहुत दूर तक गई हुई सीढ़ियाँ दिखाई दीं और यह मालूम हुआ कि नीचे उतरने पर सोने का ढेर मिलेगा। यदि उसमें इतनी सजीवता है कि उक्त सूचना के साथ ही वह उस स्वर्ण-राशि के साथ एक प्रकार के मानसिक संयोग का अनुभव करने लगा तथा उसका चित्त प्रफुल्ल और अंग सचेष्ट हो गये, उसे एक-एक सीढ़ी स्वर्णमयी दिखाई देगी, एक-एक क्षण उसे सुख से बीता हुआ जान पड़ेगा और वह प्रसन्नता के साथ स्वर्णराशि तक पहुँचेगा। इस प्रकार उसके प्रयत्न-काल को भी फल-प्राप्ति काल के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि उसका हृदय दुर्बल होगा और उसमें इच्छामात्र ही उत्पन्न होकर रह जायेगी; तो अभाव के बोध के कारण उसके चित्त में यही होगा कि कैसे झट से नीचे पहुँच जायँ। उसे एक-एक सीढ़ी उतरना बुरा मालूम होगा और आश्चर्य नहीं कि वह या तो हारकर बैठ जाय या लड़खड़ाकर मुँह के बल गिर पड़े।

फल की विशेष आसक्ति से कर्म के लाघव की वासना उत्पन्न होती है; चित्त में यही आता है कि कर्म बहुत सरल करना पड़े और फल बहुत-सा मिल जाय। श्रीकृष्ण ने कर्म-मार्ग से फलासक्ति की प्रबलता हटाने का बहुत ही स्पष्ट उपदेश दिया; पर उनके समझाने पर भी भारतवासी इस वासना से ग्रस्त होकर कर्म से तो उदास हो बैठे और फल के इतने पीछे पड़े कि गरमी में ब्राह्मण को एक पेठा देकर पुत्र की आशा करने लगे; चार आने रोज का अनुष्ठान कराके व्यापार से लाभ, शत्रु पर विजय, रोग मे मुक्ति, धन-धान्य की वृद्धि तथा और भी न जाने क्या-क्या चाहने लगे। आसक्ति प्रस्तुत या उपस्थित वस्तु में ही ठीक कही जा सकती है। कर्म सामने उपस्थित रहता है। इससे आसक्ति उसी में चाहिए, फल दूर रहता है, इससे उसकी ओर कर्म का लक्ष्य काफी है। जिस आनन्द से कर्म की उत्तेजना होती है और जो आनन्द कर्म करते समय तक बराबर चला चलता है उसी का नाम उत्साह है।

कर्म के मार्ग पर आनन्दपूर्वक चलता हुआ उत्साही मनुष्य यदि अन्तिम फल तक न भी पहुँचे तो भी उसकी दशा कर्म न करनेवाले की अपेक्षा अधिकतर अवस्थाओं में अच्छी रहेगी; क्योंकि एक तो कर्म-काल में उसका जो जीवन बीता वह सन्तोष या आनन्द में बीता, उसके उपरान्त फल की अप्राप्ति पर भी उसे यह पछतावा न रहा कि मैंने प्रयत्न नहीं किया। फल पहले से कोई बना-बनाया पदार्थ नहीं होता। अनुकूल प्रयत्न-कर्म के अनुसार, उसके एक-एक अंग की योजना होती है। बुद्धि-द्वारा पूर्ण रूप से निश्चित की हुई व्यापार-परम्परा का नाम ही प्रयत्न है। किसी मनुष्य के घर का कोई प्राणी बीमार है। वह वैद्यों के यहाँ से जब तक औषधि ला-लाकर रोगी को देता जाता है और इधर-उधर दौड़-धूप करता जाता है तब तक उसके चित्त में जो सन्तोष रहता है—प्रत्येक नये उपचार के साथ जो आनंद का उन्मेष होता रहता है—यह उसे कदापि न प्राप्त होता, यदि वहाँ रोता हुआ बैठा रहता। प्रयत्न की अवस्था में उसके जीवन का जितना अंश सन्तोष, आशा और उत्साह में बीता, अप्रयत्न की दशा में उतना ही अंश केवल शोक और दुःख में कटता । इसके अतिरिक्त रोगी के न अच्छे होने की दशा में भी वह आत्मग्लानि के उस कठोर दुःख से बचा रहेगा जो उसे जीवन भर यह सोच-सोचकर होता कि मैंने पूरा प्रयत्न नहीं किया ।

कर्म में आनन्द अनुभव करनेवालों ही का नाम कर्मण्य है। धर्म और उदारता के उच्च कर्मों के विधान में ही एक ऐसा दिव्य आनन्द भरा रहता है कि कर्त्ता को वे कर्म ही फल-स्वरूप लगते हैं। अत्याचार का दमन और क्लेश का शमन करते हुए चित्त में जो उल्लास और तुष्टि होती है वही लोकोपकारी कर्म-वीर का सच्चा सुख है। उसके लिए सुख तब तक के लिए रुका नहीं रहता जब तक कि फल प्राप्त न हो जाय; बल्कि उस समय से थोड़ा-थोड़ा करके मिलने लगा है जब से वह कर्म की ओर हाथ बढ़ाता है।

कभी-कभी आनन्द का मूल विषय तो कुछ और रहता है, पर उस आनन्द के कारण एक ऐसी स्फूर्ति उत्पन्न होती है जो बहुत से कामों की ओर हर्ष के साथ अग्रसर करती है। इसी प्रसन्नता और तत्परता को देख लोग कहते हैं कि वे काम बड़े उत्साह से किये जा रहे हैं। यदि किसी मनुष्य को बहुत-सा लाभ हो जाता है या उसकी कोई बड़ी भारी कामना पूर्ण हो जाती है तो जो काम उसके सामने आते हैं। उन सबको वह बड़े हर्ष और तत्परता के साथ करता है । उसके इस हर्ष और तत्परता को भी लोग उत्साह ही कहते हैं। इसी प्रकार किसी उत्तम फल या सुखप्राप्ति की आशा या निश्चय से उत्पन्न आनन्द, फलोन्मुख प्रयत्नों के अतिरिक्त और दूसरे व्यापारों के साथ संलग्न होकर, उत्साह के रूप में दिखाई पड़ता है। यदि हम किसी ऐसे उद्योग में लगे हैं जिससे आगे चलकर हमें बहुत लाभ या सुख की आशा है तो हम उस उद्योग को तो उत्साह के साथ करते ही हैं, अन्य कार्यों में भी प्रायः अपना उत्साह दिखा देते हैं।

यह बात उत्साह में नहीं, अन्य मनोविकारों में भी बराबर पाई जाती है। यदि हम किसी बात पर क्रुद्ध बैठे हैं और इसी बीच में कोई दूसरा आकर हमसे कोई बात सीधी तरह भी पूछता है तो हम उस पर झुँझला उठते हैं। इस झुँझलाहट का न तो कोई निर्दिष्ट कारण होता है न उद्देश्य। यह केवल क्रोध की स्थिति व्याघात को रोकने की क्रिया है, क्रोध की रक्षा का प्रयत्न है। इस झुँझलाहट द्वारा हम यह प्रकट करते हैं कि हम क्रोध में हैं और क्रोध ही में रहना चाहते हैं। क्रोध को बनाये रखने के लिए हम उन बातों से भी क्रोध ही संचित करते हैं जिनसे दूसरी अवस्था में हम विपरीत भाव प्राप्त करते। इसी प्रकार यदि हमारा चित्त किसी विषय में उत्साहित रहता है तो हम अन्य विषयों में भी अपना उत्साह दिखा देते हैं। यदि हमारा मन बढ़ा हुआ रहता है तो हम बहुत से काम प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी बात का विचार करके सलाम-साधक लोग हाकिमों से मुलाकात करने के पहले अर्दलियों से उनका मिजाज पूछ लिया करते हैं।

शब्दार्थ-टिप्पण

सुभीता सुविधा **प्रयोजन** उद्देश्य, हेतु **वाग्वीर** बोलने में होशियार **मीमांसक** समालोचक **तुषार-मंडित** बर्फ से ढँका हुआ **अभ्रभेदी** आकाशभेदी **धृति** धैर्य **श्लाघ्य** प्रशंसनीय **दृष्टांत** उदाहरण **शृंखला** कड़ी, जंजीर

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए :

(1) किसी कार्य को उत्साह की संज्ञा कब दी जा सकती है ?
(2) उत्साही वीर और बेहया में क्या अंतर है ?
(3) उत्साह किसे कहते हैं ?
(4) कर्मवीर किसे कहते हैं ?
(5) उत्साह के प्रमुख भेद लिखिए।
(6) युद्धवीर में आलंबन किसे कहा गया है ?
(7) सच्ची दानवीरता किसे कहेंगे ?
(8) साहस और उत्साह में क्या अंतर है ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए :

(1) उत्साही व्यक्ति का ध्यान कहाँ तक फैला रहता है ?
(2) एक कार्य की सफलता दूसरे कार्य को किस प्रकार प्रभावित करती है ?
(3) कर्म में लाघव की वासना क्यों उत्पन्न होती है ?
(4) सलाम-साधक लोग हाकिमों से मिलने से पहले अर्दलियों से उनका मिज़ाज क्यों पूछ लिया करते हैं ?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से लिखिए :

(1) किस प्रकार के लोगों से सुधार-कार्य में सहायता के स्थान पर बाधा पहुँचने की संभावना रहती है ?
(2) फल की इच्छाभाव से किया जाने वाला प्रयत्न आनंदशून्य क्यों होता है ?
(3) कर्म के अनुष्ठान में आनंद के विविध रूपों को समझाइए।
(4) 'फल पहले से कोई बना-बनाया पदार्थ नहीं होता' पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

4. आशय स्पष्ट कीजिए :

(1) साहसपूर्ण आनंद की उमंग का नाम उत्साह है।
(2) कर्म-सौंदर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं।
(3) फलप्रधान भावना लोभ का ही एक प्रच्छन्न रूप है।

5. निम्नलिखित शब्दों के समानार्थी शब्द लिखिए :

ग्लानि, लाभ, मुक्ति, क्लेश, दिव्य, औषधि।

6. निम्नलिखित शब्दों के विलोम शब्द लिखिए :

अपेक्षित, धीरता, अशुभ, निश्चेष्ट, तत्परता, श्लाघ्य, पापाचार, खिन्न।

7. सही विकल्प चुनकर वाक्य पूरा कीजिए :

(1) युद्धवीर में .... को आलंबन कहा गया है।

(A) विजित (B) विजेतव्य (C) विजेता (D) विजयी

(2) फल की विशेष आसक्ति से कर्म के .... की वासना उत्पन्न होती है।

(A) लघुता (B) प्रारब्ध (C) लाघव (D) विभाजन

(3) कर्म में आनंद अनुभव करनेवालों ही का नाम .... है।

(A) कर्मण्य (B) नम्य (C) आनंदी (D) अनुभवी

(4) फल .... रहता है, इससे उसकी ओर कर्म का लक्ष्य काफी है।

(A) निकट (B) सामने (C) दूर (D) ऊपर

विद्यार्थी-प्रवृत्ति

- 'उत्साह' विषय पर आठ-दस वाक्यों का अनुच्छेद लिखिए।
- कर्म एवं फल की शृंखला के अनुभव की चर्चा कीजिए।
- नीचे दिए गए परिच्छेद का एक तिहाई में सार लिखिए :
  ''फल की विशेष आसक्ति से .... का नाम उत्साह है।''

शिक्षक-प्रवृत्ति

- कर्म एवं फल की शृंखला के दौरान विद्यार्थियों को धीरज रखने की सीख दीजिए।
- लेखक के 'क्रोध' निबंध का सारांश समझाइए।

●

7 रानी और कानी

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

(जन्म : सन् 1897 ई.; निधन : 1961 ई.)

छायावाद के प्रमुख ओजस्वी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल में मेदनीपुर जिले के महिषादल में हुआ था। इन्होंने संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी का अध्ययन घर पर ही किया था। ये जीवन पर्यन्त अभावों से जूझते रहे। इसके बावजूद वे किसी के सामने झुके नहीं और एक निराली मस्ती तथा फक्कड़पन के साथ जीते रहे। यथार्थवादी आलोचकों के उग्र प्रहार और प्रकाशकों के शोषण का शिकार होने के बाद भी इन्होंने कभी दैन्यवृत्ति स्वीकार नहीं की। माता, पिता, पत्नी और पुत्री की असमय मृत्यु के आघात ने तो इन्हें इतना हिला दिया कि 'दुख ही जीवन की व्यथा रही' जैसी पंक्तियों के रूप में इनका हृदय फूट पड़ा। 'महाप्राण' और 'निराला' शब्द इनके स्वभाव और वैचित्र्य के अनुरूप हैं।

निराला के साहित्य और स्वभाव का मूल स्वर विद्रोही रहा है। अपनी विद्रोही चेतना के कारण इन्होंने हर दिशा में परम्पराएँ तोड़ी और यहाँ तक कि स्वयं अपनी ही परम्परा में भी न बंध सके। सबसे पहले इन्होंने ही छायावाद का अतिक्रमण कर प्रगतिशील एवं प्रयोगशील काव्य-दृष्टि का परिचय दिया । इनकी कविता में छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-वर्णन के साथ विद्रोह और मानव के प्रति सहानुभूति का स्वर है। छंद के बंधन तोड़कर मुक्त छन्द का प्रवर्तन किया और नवगीत की नवदिशा की ओर निर्देश किया। कोमलकांत पदावली के साथ-साथ ओजपूर्ण शब्दावली का भी इन्होंने सफल प्रयोग किया।

'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'नये पत्ते', 'अपरा' इनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं। इनकी 'भिक्षुक', 'विधवा', 'जूही की कली' कविताएँ बहुत ही प्रसिद्ध हुईं। 'राम की शक्तिपूजा' निराला की ही नहीं समग्र छायावादी काव्य की एक श्रेष्ठ उपलब्धि है। कुछ समय तक निराला ने 'मतवाला' और 'समन्वय' का सम्पादन भी किया। निराला ने उपन्यास, कहानियाँ, निबंध, समीक्षा तथा संस्मरण भी लिखे हैं।

'रानी और कानी' कविता में एक ऐसी लड़की की वेदना का वर्णन है, जिसकी 'माँ' उसे प्यार से 'रानी' कहती है, लेकिन इसके उलट चेहरा कुरूप है। पड़ोस की औरतें भी उसकी कुरूपता को याद कराके उसकी और उसकी माँ की यातना बढ़ाती रहती हैं। विडंबना यह है कि यह यातना उसे अपने चरित्र के तमाम गुणों के बावजूद झेलनी पड़ती है।

माँ उसको कहती है रानी
आदर से, जैसा है नाम;
लेकिन उसका उल्टा रूप,
चेचक के दाग, काली, नक-चिप्टी,
गंजा-सर, एक आँख कानी।

रानी अब हो गयी सयानी,
बीनती है, काँड़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी;
फिर भी माँ का दिल बैठा रहा,
एक चोर घर में पैठा रहा,
सोचती रहती है दिन-रात
कानी की शादी की बात,
मन मसोसकर वह रहती है
जब पड़ोस की कोई कहती है-
''औरत की ज़ात रानी,
ब्याह भला कैसे हो
कानी जो है वह।''
सुनकर कानी का दिल हिल गया,
काँपे कुल अंग,
दायीं आँख से
आँसू भी बह चले माँ के दुख से,
लेकिन वह बायीं आँख कानी
ज्यों-की-त्यों रह गयी रखती निगरानी।

शब्दार्थ-टिप्पण

नकचिप्टी जिसकी नाक चपटी हो **सयानी** प्रौढ़, वयस्क, चालाक **गंजा** जिसके सिर पर बाल न हो **काँड़ना** कूटना, कुचलना **बुहारना** झाड़ना, झाड़ू लगाना **करकट** कूड़ा **निगरानी** निरीक्षण, पहरेदारी।

स्वाध्याय

1. एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) माँ प्यार से कानी बेटी को किस नाम से पुकारती थी ?
(2) बेटी के विषय में माँ क्यों चिंतित थी ?
(3) बेटी के चेहरे पर किसके दाग थे ?
(4) रानी का रंग कैसा था ?

2. दो-तीन वाक्यों में उत्तर लिखिए :

(1) रानी क्या-क्या कार्य करती थी ?
(2) बेटी की चिन्ता में माँ के मन में कौन-कौन से विचार आते ?
(3) पड़ोसिन रानी के विषय में क्या कहती है, क्यों ?

3. प्रश्नों के उत्तर विस्तार से लिखिए :

(1) पड़ोसिन की बात का रानी पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(2) काव्य का केन्द्रीय भाव अपने शब्दों में लिखिए।

4. भाव स्पष्ट कीजिए :

''औरत की जात रानी,
ब्याह भला कैसे हो
कानी जो है वह।''

5. काव्य के आधार पर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(1) रानी अब हो गयी ....।

(A) सयानी (B) नौकरानी (C) दानी (D) स्वाभिमानी

(2) सोचा करती है दिन-रात, रानी की .... की बात।

(A) शादी (B) बर्बादी (C) दादी (D) खादी

6. मुहावरों के अर्थ लिखकर अपने वाक्य में प्रयोग कीजिए :

(1) दिल बैठना

(2) मन मसोस कर रह जाना

7. समानार्थी शब्द लिखिए :

घर, हाथ, दिल, रात।

8. विरोधी शब्द लिखिए :

आदर, काली, दाईं, दुःख।

विद्यार्थी-प्रवृत्ति

- छात्र कक्षा में इस काव्य का सस्वर वाचन करें।

शिक्षक-प्रवृत्ति

- 'चेचक' उन्मूलन कार्यक्रम की जानकारी दें।
- 'माँ की वेदना' से संबंधित अन्य काव्यों का संकलन करवाएँ।

8 अशफ़ाक उल्ला खाँ

रामप्रसाद बिस्मिल

(जन्म : सन् 1887 ई.; निधन : सन् 1927 ई.)

रामप्रसाद का जन्म शाहजहाँपुर (उ. प्र.) में एक निम्नवित्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके जन्म के कुछ वर्ष पहले ही उनके पितामह रोजी-रोटी की तलाश में ग्वालियर के अपने गाँव से आकर यहाँ बसे थे। पिता साधारण पढ़े-लिखे थे। कचहरी में सरकारी स्टाम्प बेचकर परिवार का पालन किया तथा बच्चों को शिक्षा दिलाई। बिस्मिल ने उर्दू मिडिल की परीक्षा में दो बार असफल होने पर अंग्रेजी मिडिल की पढ़ाई की। स्वाध्याय से बांग्ला भाषा सीखी। आरंभ में आर्यसमाज की प्रवृत्तियों से जुड़े बाद में क्रांतिकारी संगठन में सक्रिय हुए। 'काकोरी रेल डकैती' कांड का मुख्य अभियुक्त मानकर इन्हें फाँसी की सजा हुई और वे शहीद हो गए।

आरंभ में 'राम' तथा 'अज्ञात' नाम से पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे। बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद भी किए। 'आत्मकथा' फाँसी के दो दिन पहले जेल में पूरी करके उन्होंने किसी तरह बाहर भिजवाई। जिसके कुछ अंश श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के संपादन में 'काकोरी के शहीद' नाम से छपा।

यहाँ संकलित अंश में उनके साथी अशफ़ाक उल्ला खाँ की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। बकौल रामप्रसाद बिस्मिल: 'बहुधा क्रांतिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने एक मुसलमान को क्रांतिकारी दल का एक प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किए, वे सराहनीय हैं। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।'

मुझे भली-भाँति याद है, कि जब मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहाँपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यंत्र के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका काँग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट-मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अंत में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किन्तु छोटे भाई बनकर तुम्हें संतोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गए। सब को आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्य-समाजी और मुसलमान का मेल

कैसा ? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्य-समाज मंदिर में मेरा निवास था, किन्तु तुम इन बातों की किंचितमात्र चिंता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु तुम अपने निश्चय में दृढ़ थे। मेरे पास आर्य-समाज मंदिर में आते-जाते थे। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुल्लमखुल्ला गालियाँ देते थे, काफ़िर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश-भक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानों को खुदा अकल देता, कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर के हिन्दुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिन्दी में कोई लेख या, पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें ? तुमने स्वदेशभक्ति के भावों को भलीभांति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माताजी तथा भ्राताजी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँह से हिन्दी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर बहुतों को संदेह होता था कि कहीं इस्लाम-धर्म त्याग कर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते ? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्र मण्डली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने तुमने एक थाली में भोजन किए। मेरे हृदय से वह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हाँ ! तुम मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकते थे। तुम तो सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हारे हृदय-कम्प (Palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँह में बारंबार 'राम' 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई-बाँधवों को आश्चर्य था कि 'राम', 'राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह' 'अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम-राम' की रट थी। उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरंत मैं बुलाया गया । मुझसे मिलने पर तुम्हें शांति हुई, तब सब लोग 'राम-राम !' के भेद को समझे।

अंत में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रँग गए। तुम भी कट्टर क्रांतिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि किसी प्रकार मुसलमान नवयुवकों में भी क्रांतिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रांतिकारी आंदोलन में योगदान दें। जितने तुम्हारे बन्धु तथा मित्र थे सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। बहुधा क्रांतिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रांतिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किये, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शांति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्जवल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफ़ाक उल्ला ने क्रांतिकारी आंदोलन में योग दिया। अपने भाई-बन्धु तथा सम्बन्धियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे ! जैसे तुम शारीरिक